डाक्टर लक्ष्मीनारायण रतरा H. M. B.

—कृत—

FOOD - DE - MEDICINE.

का

परिवर्द्धित - भाषानुवाद

आहार ही औषध है

भाषानुवादक—

श्रीमान भवानीप्रसाद जी प्रौफेसर

प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्रोपाध्याय,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

प्रथम संस्करण	चैत्र मास	मूल्य
१०००	सं० १९९९	१)

सर्वाधिकार सुरक्षित है।

पूर्व-प्रवचन



चिरकाल से 'आहारशास्त्र' पर एक सुन्दर, सुबोध्य तथा ज्ञानप्रद ग्रन्थ की आवश्यकता जन-साधारण द्वारा, बहुत अनुभव की जा रही थी।

बीस वर्षसे अधिकके अपने प्रतिदिनके चिकित्सा व्यवसाय में, विषम (कठिन) तथा पुराने रोगों से पीड़ित रोगियों की दशामें आहार के सुधार द्वारा, जो विलक्षण परिणाम (फल) प्राप्त होते रहे हैं, उनसे मेरी यह दृढ़ धारणा बन गई है कि रोगोंके उन्मूलन में समुचित पथ्य की व्यवस्था किसी अन्य साधन की अपेक्षा कहीं अधिक काम करती है।

आजकल आहार के विषय में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, उसका श्रेय उन सच्चे प्राकृतिक चिकित्सकों को है, जो रोग की चिकित्सा में नाना प्रकार के फलों तथा शाकों के प्रभावों और गुणों के विषय में परीक्षण करने में संलग्न हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण रतरा कृत 'फुड-डी-मेडिसिन (Food-de-Medicine) इस दिशा में, इस ग्रन्थ प्रणेता का सर्व प्रथम प्रयत्न है और जहां तक मुझ को ज्ञात है, वह प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार इस महत्वपूर्ण विषय के प्रतिपादक तथा अद्यावधि भारतवर्ष में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के सर्वोत्तम ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ है।

सच्चे चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह अपने रोगियों को आहार और स्वास्थ्यशास्त्र की शिक्षा देवे, न कि उनके लिए

औषधों का विधान करे। इन औषधियों का प्रयोग यदि बहुत दिनों तक किया जाता है, तो वे रोगी के शरीर में रोग के विष को दबा देनेका कार्य करती हैं और इस प्रकार आगे और अधिक गड़बड़ उत्पन्न करने का हेतु होती हैं। फुड-डी-मेडिसिन (Food-de-Medicine) ग्रंथ के सिद्धान्त कार्य में परिणत होने पर यह दिखलाने में समर्थ होंगे कि रोग आकस्मिक घटना वा विधि का विधान नहीं है, किन्तु अज्ञान के कारण स्वास्थ्य और आहार के नियमों के नियमित भंग वा अवहेलना के कारण ही उसकी उत्पत्ति होती है और यदि कुव्यसनों का परित्याग कर दिया जाय, तो रोग स्वयमेव जड़ से चला जाता है।

इस पुस्तक में जो अमूल्य ज्ञान संगृहीत है, वह उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का आधार लिए हुए है, जो कि लेख में आए हुए सहस्रों रोगियों की दशा में सत्य और भ्रम रहित सिद्ध हो चुके हैं और मुझ को आशा है कि इस ग्रंथ में स्थापित (प्रदत्त) सिद्धान्तों का आचरण और प्रचार साधारण जनों और अपने रोगियों के वास्तविक कल्याण को लक्ष्य में रखने वाले चिकित्सकों के लिए बहुमूल्य प्रमाणित होगा।

डा० सोमदत्त
प्राकृतिक चिकित्सक,
६, निस्बत रोड लाहौर



* प्रस्तावना *



प्रिय बन्धुओ !

आजकल यह मानी हुई बात है कि प्रचलित विधान (कानून) का अज्ञान (अनजानपना) अक्षम्य है—क्षमा नहीं किया जाता है—और जो कोई विधान का भंग करता है-उसको तोड़ता है वह अवश्य उसका फल पाता है—उसका दंड भोगता है। चिकित्सा-शास्त्राभिमानी जन, समय कुसमय, सदा अपनी विजय का ढोल पीटते रहते हैं। ये मृत्यु (मौत) का सामना करने वाले गर्वीले योद्धा अपने मोर्चों पर ऐसे जमे हुए हैं कि कोई उनसे यह भी पूछने वाला नहीं है कि उनके मुंह में कितने दांत हैं। उन की इस फूं फां के रहते हुए भी, घटनाचक्र के वास्तविक प्रत्यक्ष परिणाम (नतीजे) उनके वृथा अभिमान (घमंड) को झुठला रहे हैं और इस बात के कहने में लेशमात्र (तनिक) भी अतिशयोक्ति (बढ़ावा) नहीं है कि औषध चिकित्सकों के हाथ से उनके रोगियों के प्राण उससे कहीं अधिक संख्या में जाते हैं, जितने कि उनके न रहते हुए वा उन के औषधों के अभाव वा कोई भी औषधों के अभाव वा कोई भी औषध न देने पर जाते। औषधों की असीम वृद्धि (बढ़ोतरी) प्रकृतिमाता (कुदरत = Nature) की अवज्ञा—उसके विधान का पालन न करने—का कोई कार्यसाधक प्रतिकार वा उपाय वा वास्तविक चिकित्सा नहीं है और मैं आपको पूरा विश्वास दिलाता हूं कि प्रकृति की रचना—उसकी रची हुई

वस्तुओं की—बराबरी कोई भी वस्तु नहीं कर सकती और इस अनहोने कार्य के लिए वृथा प्रयासी ये औषध-चिकित्सकाभिमानी जन प्रलयपर्यन्त भी कभी सफल न हो सकेंगे।

"भोजनमेव भेषजम्" वा आहार ही औषध है "Food-de-Medicine" कोई नवीन सिद्धान्त—नई बात—नहीं है, प्रत्युत मेरी यह प्रस्तुत बात इस पृथिवी के समान ही प्राचीन (पुरानी) है। स्वयंसिद्ध सत्य (Self edident truth) हम को यह बतलाता है कि जहां कहीं भी वनस्पतिसृष्टि स्वभावत: विद्यमान है वा मनुष्य द्वारा वह स्थिर रखी जा सकती है वहीं मनुष्य भी रह सकता है—वहीं मनुष्य का भी निवास है। प्राकृतिक सम्बन्ध इस संयोग (साहचर्य) को प्रत्यक्ष प्रमाणित करता है। मनुष्य तथा वनस्पति का यह साहचर्य पुरुष और स्त्री जैसा परस्पर साहचर्य है।

सब जानते हैं कि सजातीय पक्षी ही मिल कर आकाश में उड़ सकते हैं। फिर समझ में नहीं आता कि विजातीय वा अप्राकृतिक द्रव्य हमारे आमाशय में किस प्रकार समा सकते हैं—आत्मसात् हो सकते हैं।

भूगोल के सारे प्राणी रोगी होने पर अपने रोगों की चिकित्सा आप कर लेते हैं यह प्राकृतिक नियम सर्वत्र देखने में आता है, किन्तु उनमें सर्वश्रेष्ठ मनुष्य ही अपने रोग में अन्यों की सहायता का आश्रय लेता है। प्रकृति तो स्वयं अपने प्रयत्न से ही रोग के रूप में आपके देह के दोषों को आपके देह से बाहर

निकाल कर आपको नीरोग वा स्वस्थ रखना चाहती है, किन्तु आप उसके कार्य में हस्तक्षेप करके अनधिकार चेष्टा करके 'अव्यापारेषु व्यापार:" की संस्कृत कहावत को चरितार्थ करते हैं। कृपया आप प्रकृति के अटल नियम का उल्लंघन न करें तो आप सदा सुखी रहेंगे। प्रकृति की कृपा से असाध्य समझे जाने वाले रोगों पर विजय प्राप्त हो चुकी है और वह दिन दूर नहीं है, जब कि प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य प्रकृति की इस अमूल्य देन से लाभ उठाएगा।

प्राकृतिक आहार द्वारा देह का पोषण ही जीवन और मानव समाजकी प्रारम्भिक आवश्यकता है। इस प्राकृतिक आहार में गड़बड़ करके जो हम आत्मा के निवास स्थान मानव देह में रोग का प्रवेश कराते हैं, यह हमारा अक्षम्य अपराध है। इस लिए आंगल भाषा की यह उक्ति यथार्थ ही है कि A sick man is a rascal = रोगी जन धूर्त है—उसका रोग उसके ही अपराध (प्रकृति के नियम के उल्लंघन के रूप में) का कुफल है। हमको अपने प्रति, और हमारी व्यक्ति के मानव समाज का अंग होने के कारण मानव समाज के भी प्रति इस उग्र अपराध से बचना चाहिए।

मनुष्य के लिए सुव्यवस्थित (ठीक २) जीवन-यापन का ज्ञान ऐसा ही आवश्यक है, जैसा कि उसको उषा का प्रकाश अपेक्षित है। मैं चाहता हूं कि प्रत्येक मनुष्य पृथिवीके अन्य प्राणियों के समान अपना चिकित्सक वा वैद्य (डाक्टर) आप बने और उसके इन सरल साधनों को अविलम्ब अंगीकार करे। इन सरल

साधनों के सरल सिद्धान्त उसके लिए स्वभावतः सुलभ हैं—प्राकृतिक हैं। उसने उनको अपने अज्ञानसे भुला दिया है। उसे उनको पुनः सीख कर उनका अभ्यासी बनना चाहिए।

स्वास्थ्य संरक्षा की कला की शिक्षा प्रत्येक मानव देहधारी को बाल्यावस्था से ही अनिवार्य रूप से मिलनी चाहिए। मैंने अपने इस ग्रंथ में स्वास्थ्य के मूल आधार और एकमात्र अमोघ साधन आहार के गुणों का विवेचन और वर्णन, स्वस्थ और रुग्ण दोनों दशाओं के विचार से यथासम्भव सरल और सुगम रीति से किया है। यदि मनुष्य उन पर पूर्णतः चले तो स्वास्थ्य-साफल्य में सन्देह का कोई स्थान नहीं है।

अपने सब मानव बन्धुओं की सेवा में, चाहे वे किसी जाति, वंश, वर्ण वा सम्प्रदाय वा देश के हों, मेरा सानुनय निवेदन है कि वे मेरे वर्णित उपायों का परीक्षण करें, और यदि वे ठीक सिद्ध हों, तो उनका प्रचार संसार के कोने २ में कर देवें जो मनुष्य स्वस्थ बने रहने के रहस्य को जानता है, वह भूतल पर वर्तमान किसी रोग से भी भयभीत नहीं होता। कायर पुरुष तो मानो मृत्यु के आगमन से पूर्व ही मर जाते हैं।

स्वास्थ्य का आधार आवश्यक रूपेण किसी विज्ञान पर बिल्कुल नहीं है-स्वास्थ्य का विज्ञान से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सच पूछिए तो विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य के नियमों के उद्घाटन के बहुत पूर्व प्रकृति ने मनुष्य को स्वस्थ बने रहनेकी रीति सिखला दी थी। प्रकृति अपनी स्वामिनी स्वयमेव है, वह सर्वशक्तिमती है।

मनुष्य उसको अपने पीछे नहीं चला सकता। वह अपना कार्य अपने समय पर स्वनियमानुसार स्वयं करती रहती है। स्वास्थ्य-लाभ के लिए कोई भी उतावला (Quick) और अटकल पच्चू (Quack) उपाय नहीं है। अब आवश्यकता है कि औषधियों के ऊपर से रहस्य का आवरण हटा दिया जाय। जो बात सबसे बड़ी संख्या की सब से बड़ी भलाई में बाधक हो, उसको खोटे सिक्के के चलन के समान तुरन्त रोक देना चाहिए। रोग तो प्रकृति की ओर से शरीर को स्वयमेव स्वच्छता का प्रयत्नमात्र है।

मनुष्य आदिसृष्टि के विचार से एक जन्तुमात्र है और उसको भी अन्य जन्तुओं के समान ही स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का दृढ़ अनुयायी होना चाहिए। यदि वह जन्तु के रूप में ही दृढ़ और बलवान् न रहेगा, तो उसकी मृत्यु शीघ्र हो जायगी।

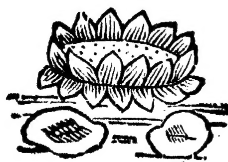
समय की आवश्यकता की मांग है कि हम तत्काल अपने कर्तव्य का पालन करें-अपने कर्तव्यपथ पर तुरन्त आरूढ़ हो जांय। इसके अतिरिक्त अन्य कोई रीति नहीं है। अब सुव्यवस्थित जीवनयापन का ज्ञान उस प्रत्येक पुरुष के लिए सुलभ है, जो उसकी प्राप्ति के प्रयास में प्रवृत्त होना चाहता है। अंग्रेज़ीकी यह कहावत 'Take time in time, ere time be lost' समय को, समयके अतिवाहित होनेसे पूर्व समय पर ही ग्रहण करो अर्थात् समय रहते हुए तत्काल अपने कर्तव्य का पालन करो, सोने की सीख है—सौवर्ण शिक्षा है। वाणी के संयम का अभ्यास करो और शिक्षा शिलालेख के समान अमिट (न मिटने

वाली तुम्हारे सामने प्रस्तुत है, उसका अनादर न करो -उसके अंगीकार से पीछे न हटो। उसको सुन्दर कला के रूपमें कार्यमें परिणत करो और बिना किसी धन के व्यय (एक दमड़ी खर्च बिना) स्वास्थ्य के मधुर फलका उपभोग करो। निर्धनता धनके अभाव का नाम नहीं है, किन्तु वस्तुतः वह (निर्धनता) अपनी आवश्यकताओं का प्राचुर्य मात्र (बढ़ोतरी हो) है। मेरी आकांक्षा यही है कि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें और यदि मेरा निवेदित यह ज्ञान समय पर आपके काम आने के अपने प्रयोजन को पूर्ण करे और इस भूमंडल के सब मनुष्यों के हार्दिक मित्र की सेवा का धर्म पालन कर सके, तो मैं आपका बहुकृतज्ञ हूंगा और अपने को पूर्ण पुरस्कृत समझूंगा।

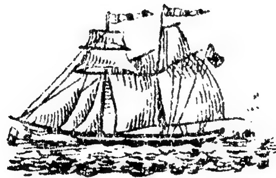
मनुष्य अपनी बुद्धि (समझ बूझ) से ही अपनी रक्षा कर सकता है और उसपर रोग का आक्रमण उसकी विलासिता वा उच्छृङ्खल इन्द्रियसुखभोग का कर चुकाना मात्र है।

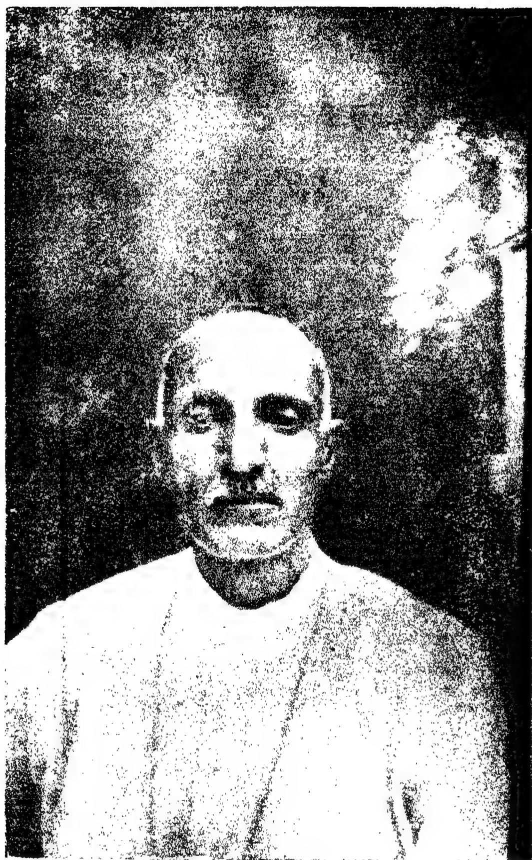
डेरा गाज़ीखां
१२ मार्च १६३६ ई०

लक्ष्मीनारायण रतरा,
H. M. B. (HOMEO).



* विषय-सूची *





डा० लक्ष्मीनारायण रतरा,

[जन्म-वि० सं० १६४०]

❀ ओ३म् ❀

भोजनमेव भेषजम् ।

आहार ही औषध है

[विषय-प्रवेश]

जीना सीखो, सुजीवन आपकी रक्षा स्वयं कर लेगा

इस बात का निषेध कोई भी न करेगा कि मनुष्य का संघटन (बनावट) उसके भोजन (आहार) पर निर्भर है। "वस्तुतः मनुष्य अपनी भोजन की थाली पर ही बनता वा बिगड़ता है;" यह बात विश्वास का कथन मात्र ही नहीं है, किन्तु कार्यरूपेण यथार्थ है। यदि मनुष्य के प्रायः प्रत्येक रोग के मूल कारण का पता लगाया जाय तो वह उसका भ्रमभरित (मूर्खता पूर्ण) कुत्सित भोजन ही निकलेगा और यदि सत्य का अर्थ निश्चित ज्ञान वा तथ्यार्थ है, तो मैं अपने पाठकों को निश्चय दिलाता हूं कि केवल समुचित आहार से ही सारे रोग अच्छे हो सकते हैं। मनुष्य का शरीरयन्त्र स्वयमेव एक चमत्कार है। वह स्वयमेव सुव्यवस्थित हो जाने वाला ([1]Self adjusting) स्वयमेव नियमबद्धता को प्राप्त होने वाला ([2]Self regulating) स्वयमेव सुधर जाने वाला ([3]Self repairing) तथा स्वयमेव विकसित होने वाला ([4]Self developing) यन्त्र है।

। स्वयंव्यवस्थापकः = ... २ स्वयंनियामकः = Sel

संसार में ऐसी कोई भी चेतन सत्ता नहीं है जो स्वयमेव स्वविनाशक (Self destructive) गुण रखती हो। जो शक्ति हमको स्रजती है वही हमको स्थिर भी रखती है— अच्छा भी करती है। इस शक्ति को केवल ईन्धन मिलते रहने की आवश्यकता है।

सेमिटिक धर्मग्रन्थों—बाइबिल, कुरान आदि—की गाथा के अनुसार आदि सृष्टि से मनुष्य को स्वर्ग में अदन के उद्यान के केवल फल खाने का ही ईश्वरीय आदेश था और ज्यों ही उसने इस ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन किया, वह स्वर्ग से वहिष्कृत कर के मर्त्यलोग में पटक दिया गया। इस गाथा से यही निष्कर्ष निकलता है कि अपने स्वाभाविक (प्राकृतिक) आहार फलों का परित्याग ही उसके सुखधाम (स्वर्ग) से पतन का कारण बना था। हमारे उदर (आमाशय) की रचना इस बात की पुष्टि करती है और जीवित और मृत जन्तुओं के आमाशयों के निरीक्षण से इसका प्रमाण मिला है कि मनुष्य निसर्गतः फलाहारी है।

विज्ञान हमको यह बतलाता है कि यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं तो हमारा रक्त क्षारीय (Alkaline) रहना चाहिए और ज्यों ही उसमें अम्लता (Acidity) आ जाती है, हम रोगी हो जाते हैं। स्वाभाविक (प्राकृतिक) रूप में फल और शाक हमारे रक्त को क्षारीय दशा में रखते हैं और कृत्रिम रीति से तैयार किये हुए अप्राकृतिक आहार, चाहे वे जिह्वा को स्वादु और नेत्रों को सुन्दर ही क्यों न प्रतीत होते हों, अम्लता को उत्पन्न करते

हैं। हमारे जो भी आहार, कृत्रिम-रीत्या, हाथों से तैयार किये जाते हैं, उनका उद्देश्य केवल व्यावसायिक लाभ होता है। यह व्यावसायिक लूट ही मनुष्य जाति के स्वास्थ्य के उन्मूलन—उस को खोखला बनाने—के लिए उत्तर दाता है। मिठाई, पूरी-कचौरी आदि कृत्रिम आहारों के धनलोलुप निर्माता हलवाई आदि लाभ की फसल काटते हैं। वस्तुतः हमारी चिताएं रसोई घरों में ही तैयार होती हैं।

प्राचीन काल में मनुष्य की आयु सैकड़ों वर्षों की होती थी और इस तथाकथित सभ्यता के युग में विरले ही मनुष्य १०० वर्ष के पार पहुचते हैं। खाओ, पियो और आनन्द उड़ाओ ("Eat, drink and be marry") की उक्ति ही वस्तुतः हमारे विनाश का कारण है। मनुष्य जो कुछ खाता है, उसी से उसको बल प्राप्त नहीं होता है, किन्तु वह जो कुछ खाकर पचाता है और उसको आत्मसात् करता है, उसी से उसके देह में शक्ति आती है। मनुष्य का पोषण प्रधानतः वनस्पतियों के ही आश्रित है। केवल मनुष्य ही ऐसा जन्तु है, जो अपने भोजन को आग पर पकाता है और इसी लिए वह सबसे अधिक रोगी रहने वाला प्राणी है। एक पुरानी कहावत है कि परमेश्वर तो नाना प्रकार के सुस्वादु आहारों को उत्पन्न करता है और बुद्धिभ्रष्ट जन (शैतान) उनको पकाकर बिगाड़ देता है। यह कहावत शत प्रतिशत सत्य है किसी रोटी मांगने वाले मनुष्य को रोटी के स्थान में पत्थर देने के अपराध की अपेक्षा भी परमेश्वर के प्राकृतिक आहार द्रव्यों को

आग पर पका कर व भून कर बिगाड़ना दश गुना अधिक अपराध है। संसार के किसी भी विज्ञान में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह एक सड़े हुए अण्डे को उसकी पूर्व उपयोगी दशा में ला सके। किन्तु आजकल साइन्स का बड़ा ढोल पीटा जाता है। यदि विज्ञान विज्ञान के लिये रहे तो मनुष्य के प्रति उसका कोई उपयोग नहीं है। विज्ञान से भी पूर्व हमारे देहों और हमारे जीवनों की सृष्टि होती है। अतः विज्ञान ईश्वरीय नियमों के विषय में प्रकृति को कोई शिक्षा नहीं दे सकता है और न कभी आगे ही दे सकेगा। जब तक तथाकथित डाक्टरों के अन्ध-भक्त वा डाक्टर-पन्थी अदम्य महामारी के रूप में वर्तमान रहेंगे, मनुष्य कभी भी सत्य को नहीं जान सकेंगे और स्वार्थी जन निर्लज्जता-पूर्वक उनकी मूर्खता का लाभ उठाते रहेंगे। सृष्टा के नियमों की अवहेलना करके लक्ष्य पर बाण चलाते रहने और चूकते जाने की रीति सर्वथा उपेक्षणीय है—उसको तत्काल छोड़ देना चाहिए। आज कल की औषधिचिकित्सा लक्ष्यभ्रष्ट लक्ष्यबेध का ही दृश्य है, अतः वह प्रश्रय (आदर) पाने योग्य नहीं है। वर्तमान एलोपैथी (प्रचलित डाक्टरी) चिकित्सा सुनियमित विज्ञान वा शास्त्र की कसौटी पर पूरा उतरने में विफल हो चुकी है। उसका दिवाला ऐसा कभी न निकला था, जैसा कि अब निकल रहा है। यदि अभी उसका पूर्णतः भंग (Collapsing) नहीं हुआ है तो भी उसमें स्थान स्थान पर दराड़ें तो अवश्य ही आ गई हैं। वह मरती हुई भी लखोखा मनुष्यों के प्राणापहरण का भय दिखला रही है।

अभी एक अमेरिकन पत्र में यह पढ़ कर मेरे मन को आघात पहुंचा कि "संसार में एक भी पूर्ण स्वस्थ मनुष्य विरल ही मिलेगा" "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन" की विद्यमानता का दर्शन दुर्लभ ही है। मैं इस विषय की संख्याएं देकर आपके उद्वेग का हेतु नहीं बनना चाहता, किन्तु मेरी बात में सत्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है - वह सोलहों आना सत्य है। अमरीका द्वीप के न्यूयार्क लाइफ एक्सटेंशन इन्स्टिट्यूट (The New York Life Extension Institute) पत्र में प्रकाशित दो साल की अवधि में जीवन का बीमा कराने के लिए आए हुए अंकों से यह रहस्य खुला है कि तीन लाख पचास सहस्र बीमे के प्रार्थियों की परीक्षाओं में एक भी वास्तविक स्वस्थ शरीर नहीं पाया गया। यह हमारी बुद्धि (समझ) का कैसा प्रतिबिम्ब है और औषधि चिकित्सा की अधिकार-घोषणाओं (दावों =Claims) की कैसी हीनता वा तुच्छता (Humilation) है। प्रति वर्ष लाखों और करोड़ों रुपये रोगों के अन्वेषण पर व्यय किये जाते हैं और किसी युगप्रवर्तक (Epoch-making) चमत्कार के विषय में जनता की मान्यता को जागृत रखने के लिए आए दिन एक न एक आविष्कार की घोषणा जनता के सामने होती रहती है, किन्तु खेद है कि मृत्युओं की संख्या अधिकाधिक बढ़ती जा रही है।

रोगाणुओं को कोसा जा रहा है और उनके सिर प्रायः प्रत्येक अपराध थोपा जाता है। हम रात दिन रोगाणुओं को

सांस द्वारा अपने देहों के भीतर ले जाते हैं, उनको जल में पीते हैं और उनको आहार के साथ भक्षण भी करते हैं। सच पूछिए तो रोगाणु रोगों का कारण नहीं हैं, किन्तु वे मलयुक्त (गन्दे) क्षेत्र में ही फलते फूलते हैं। रोगों से रोगाणुओं की उत्पत्ति होती है, रोगाणु रोगों के उत्पादक नहीं हैं। रोगाणु तो हमारे मलोत्पाटक (भंगी) हैं। उनका उपयोग प्रकृति माता हमारे देहों से निरर्थक द्रव्यों (मलों) के निकालने में करती है। अदृश्य वैरी को बाहर निकालने और निर्वासित करने की आशा से उस पर गोलियां और गोलां की बौछार की जाती है. किन्तु उसका फल कुछ भी नहीं होता है। जब तक देह में का रक्त विशुद्ध है उसमें प्रत्येक प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करने का सामर्थ्य विद्यमान है। विपाक्त रक्त प्रत्येक व्यक्ति में नाना रूप धारण कर लेता है और अणुवीक्षक यन्त्र (Microscope) हमारा कुछ अधिक पथप्रदर्शन नहीं करता है।

विएना (Viena) निवासी प्रसिद्ध प्रोफेसर डा० पेटेनगोफर (Professor Dr. Pettengofer) ने एक दिन रोगाणुविज्ञान (Bacteriology) पर उक्त युनिवर्सिटी में अपनी श्रेणी के विद्यार्थियों के सामने भाषण करते हुए और उनको यह बात बतलाते हुए कि रोगाणु (Bacteria) रोग का कारण नहीं है, सहसा इसका एक क्रियात्मक परीक्षण उनको दिखलाया। वे उन आश्चर्यचकित विद्यार्थियों के देखते २ तक एक गिलास उठा कर, जिसमें लखोखा विषूचिका (Cholera) के रोगाणु थे, पी गये

और इसका बुरा प्रभाव उन पर इसके अतिरिक्त और कुछ न हुआ कि उनको साधारण सी मितलाहट (Naucea) हुई। क्रियात्मक रूपेण मनुष्य का पूर्ण स्वस्थ शरीर किसी रोग के संक्रमण (छूत) वा रोगाणुओं के दुष्ट प्रभावों वा आक्रमणों के लिये अभेद्य है, किन्तु इसके लिए उसका जीवन केवल प्राकृतिक होना चाहिये। प्रकृति के सौन्दर्य और महत्व की शाश्वतिक विशालता की ज्योति सर्वत्र विराजमान रहती है। जितने भी महत्तम (सब से बड़े) सत्य हैं, वे (सब से) सरलतम होते हैं।

निदान (Diagnoises)

रोगी और चिकित्सक दोनों मिल कर सर्वत्र इस बात पर बल देते हैं कि प्रारम्भ में शुद्ध (ठीक ठीक) निदान बहुत आवश्यक है किसी रोगविशेषज्ञ वा योग्य पूर्ण परीक्षोत्तीर्ण पदवीधारी वैद्य (डाक्टर) की सेवाप्राप्ति में प्रचुर धनराशि का व्यय किया जाता है। निदान ही उनकी चिकित्सा का आधार है।

आंगल साम्राज्य में सर्वोपरि प्रामाणिक पुरुष माने जाने वाले, और आंगलीय वैद्य सभा (British Medical Association) के एक प्रधान (President) की सम्मति है कि अस्सी प्रतिशत निदान अशुद्ध होते हैं। उन्होंने न्यू कासल (New castle) नगर में अपने प्रधानपद के वार्षिक भाषण में कहा था– यदि शवव्यवच्छेद परीक्षाओं (Post Martem Examinations) को सार्वत्रिक बना दिया जाय तो उसके भारी लाभोंपर बल देने की आवश्यकता कदाचित नहीं है। अर्थात्—उसके लाभ

स्वतः सिद्ध हैं। उनकी सम्मति में निदान पर अंकुश रखने के लिये और उसके पथप्रदर्शनार्थ और अधिक शवों का व्यवच्छेद आवश्यक है। सारे भूमण्डल में प्रसिद्ध, विएना (Viena) नगर के रोग विशेषज्ञ जन भी अपनी न्यूनताओं को स्वीकार करते हैं और इस सम्मति के समर्थक हैं। अमेरिकन मेडिकल एसोसिये-शन (American Medical Association) के प्रमुख पत्र 'मेडिकल ब्रीफ' (The Medical brief) का मत है कि शुद्ध निदानों का प्रतिशत मान उग्र वृक्कशोथ (Acute Nephritis) में सोलह, और जीर्ण हृत्पेशीप्रदाह (Chronic Myocarditis) में बाईस है। सब जानते हैं कि विभिन्न निदानकर्त्ताओं की सम्मतियों में भेद रहता है। मेरी बुद्धि में तो यदि किसी अपराधी को पकड़ पाने का काम साधारण समझ से ही चल जाय तो उस पर अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। रक्त की अस्वच्छता तो स्वविद्यमानता को, मानो गरजती हुई तोप की गड़गड़ाहट के साथ घोषित कर देती है। रक्त में के विषों को हटाकर उसको शुद्ध कर दीजिये। निर्बल अंग भय (रोग के कारण) के सामने शीघ्र झुक जाते हैं, किन्तु रोग का यह कारण वही रक्त की अस्वच्छता होती है। इस बात का कुछ बहुत अधिक महत्व नहीं है कि देह के किस विशेष भाग में कंडू (खाज) और पीड़ाओं का अनुभव हो रहा है। मुख्य बात तो उस विष से छुटकारा पाना है, जो कि जीवनके स्रोत (रक्त) को मलिन (गंदा) कर रहा है।

रोग तो सुन्दरतर (और अच्छे) स्वास्थ्य का सोपान (सीढ़ी) है और सब पदार्थों के आधार में दैवी एकता विद्यमान है। शोथ स्वास्थ्यापादन (Healing) की प्रक्रिया (Process) है और सारे उग्र (Acute) रोग घर को स्वच्छ करने (बुहारने) वाले जनों के रूप में आन खड़े होते हैं। आभ्यंतर क्षत (Internal ulcers) केवल वे निकास हैं, जिनमें से होकर विकृत द्रव्य बाहर निकलने का उद्योग करता है। विक्षिप्तता (Mania) और ऐंठन (Convulsions) तक शारीरिक साम्य के प्राप्ति-प्रयत्न के लिये संघर्ष के चिह्नमात्र हैं। समस्त रोग परस्पर सबद्ध हैं और एकता अर्थात इकाई (Unit) हमारे शरीर की अंगीभूत है। मनुष्यका मन और देह एक ही हैं और उनको पृथक नहीं किया जा सकता। यह नहीं हो सकता कि हमारा कोई अंग स्वस्थ और कोई अंग अस्वस्थ रहे। मैंने परिश्रम पूर्वक बड़े ध्यान से मनुष्यों के रोगों के कारणों का पर्यालोचन (विचार) किया है और इस अन्तिम परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमारा आहार ही सब रोगों का मूल है। हम अप्राकृतिक आहार करके अस्वच्छ रक्त को जन्म देते हैं। यह बात स्मरणातीत काल से मानी हुई चली आती है कि जो आहार हम करते हैं, उसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य और आचार दोनों पर पड़ता है।

ऐसी कोई बात नहीं है जो औषधियां कर सकती हों और जिसको समुचित आहार और भी उत्तम प्रकार से न कर सकता हो। औषधियां वस्तुतः सभ्यता का अभिशाप हैं। औषधियां

केवल हमारी वंचना के लिए हमारी चाटूक्ति (खुशामद) करती हैं और जब उनका प्रयोग किया जाता है, तो वे हमारी संवेदना शक्ति (Sensation) को मार देती हैं और विषमताएं उत्पन्न करती हैं। वस्तुतः वे हमारे कष्टों को लम्बा कर देती हैं-दीर्घकाल-व्यापी बना देती हैं और रोगी स्वजीवन की अवशिष्ट अवधि में यन्त्रणाएं भोगता रहता है, जो उससे कहीं अधिक कठोरतम दंड है, जो उसको अपने रोग के कष्टों से, अपने कष्टमय जीवन में घिसटते (रेंगते) हुए उठाना पड़ता। यह उसको मृत्युमुखमें प्रवेश कराने का असंदिग्ध प्रमाण है। प्राकृतिक आहार के अभ्यासी जन को किसी भी औषध सेवन की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति प्रायः सदैव पूर्ण स्वास्थ्य की जननी है। यावनी (यूनानी) चिकित्सा पद्धति के संस्थापक हिप्पोक्रेट्स (बुकरात=Hyppocrates) ने एक बार कहा था—"मुझको ज्वर दो और मैं उससे प्रत्येक रोग अच्छा कर सकता हूं।"

रोग के उग्र आक्रमण की प्रक्रिया हानिकारक विष का निष्काशनमात्र है। वह स्वयमेव स्वरूपतः कल्याणकारक है। सोने के अंडे देने वाली मुर्गी को मारना नहीं चाहिये। बुद्धिमान बुराई को पूर्वसे ही देख लेता है, और उससे स्वरक्षा कर लेता है किन्तु भोलेजन सावधान न रहकर अपनी असावधानीका दंड भोगते हैं।

औषधविद्या अधिकांश अनुमान क्रिया (अटकल मात्र अन्धेरे में लाठी से टटोलने के समान) है। रोग के दमन द्वारा औषध कष्ट को लम्बा बना देती है, किन्तु वह उसको जड़मूल से

कभी अच्छा नहीं कर सकती। रक्त के विकृतद्रव्य (दोष=मल) भविष्य में होने वाली हानि के लिये देह में रुके पड़े रहते हैं। जितने औषध-चिकित्सक बढ़ते जा रहे हैं, उतने ही रोग भी बढ़ते जाते हैं। जिस रोगी की जीवन शक्ति खराब हो चुकी है वा दूसरे शब्दों में यदि वह वस्तुतः मर चुका है तो औषधियां उसको जीवनदान नहीं दे सकतीं। असत्य को कितनी ही बार क्यों न दोहराया जाय, वह सत्य नहीं बन सकता। औषधों का सतत सेवन, रोगों का अच्छा करने वा स्वास्थ्यापादक सामर्थ्य की न्यूनता को स्वयं बतला देता है - औषधों के सतत सेवन से रोग कभी भी नहीं जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा को उष्ट्रपक्षी-चिकित्सा नाम दिया जाना चाहिये। अर्थात्—जिस प्रकार अफ्रीका महाद्वीप के मरुस्थली का उष्ट्रपक्षी (शुतुरमुर्ग) कोई आपत्ति आने पर अपने सिर को रेत में छिपा कर उस आपत्ति को टली हुई समझ लेता है, वैसे ही औषधचिकित्सक किसी रोग के प्रादुर्भाव पर उसको औषध से दबा कर उसको गया हुआ समझ लेता है, जब कि वस्तुतः वह रोग, उष्ट्रपक्षी की दृष्टि से उपस्थित भय के अदृष्ट (ओझल) मात्र हो जाने के समान, तिरोहित होकर रोगी के देह में दबा पड़ा रहता है और समय पाकर नए रूप में रोगी पर पूरे बल से आक्रमण करता है और अपने आखेट रोगी रूप उष्ट्रपक्षी को मार डालता है। हमको इस चिकित्साभास की शरण का आश्रय न ढूंढना चाहिये। प्रकृति माता ने रोगों से युद्ध करने के लिए स्वसन्तान मनुष्य के हाथ में दो प्रबल शस्त्र पोषक आहार (Nutrition) और रोगापसारण

शक्ति (Immunity) दे रखे हैं। किसी रोग को देश (देह के स्थान विशेष) और काल (अवधि) विशेष में सीमित वा स्थापित करना नितान्त अशुद्ध है और इस अशुद्ध व्यवहार द्वारा चिकित्सा का वास्तविक भाव सत्पथ से बिल्कुल भटक गया है। वास्तविकता तो यह है कि परमपिता परमेश्वर रोग को अच्छा करता है और उसका शुल्क फीस) वैद्य (डाक्टर) महोदय लेते हैं।

किसी समस्या को पकड़े बैठे रहना उसका सुलझाना नहीं है। यह तो हठधर्मी मात्र है। औषधों के कृत्रिम स्वास्थ्य प्रदान का भेद अब खुल चुका है और जो जन अब भी उसका आश्रय लेते हैं, वे स्वयं उपालम्भ के पात्र हैं। किसी कार्य में भले प्रकार जुट जाना और पूर्णरूप से तन्मयता-पूर्वक जुट जाना काल की मांग है। किसी सुन्दर और बुद्धिमत्ता-पूर्ण कार्य में अनुचित विलम्ब करके उसके गुण और उसकी पूर्ण शोभा को खो देना निश्चय ही मूर्खता की बात है। ध्रुव सत्य और अप्रतिषेध्य वास्तविकता की तो यह घोषणा (पुकार) है कि यदि हमारे मन और मस्तिष्क लोहश्रृंखला से निगडित हैं अर्थात् उनमें सोचने और समझने की शक्ति नहीं रह गई है, तो हम किसी कार्य में प्रगति नहीं कर सकते—आगे नहीं बढ़ सकते। मन और मस्तिष्क दोनों को एक साथ पुरानी रूढ़ियों वा परम्पराओं से छुटकारा मिलना चाहिए। यदि आधुनिक मनुष्यों की भावनाएं बिल्कुल तर्कनाशील और रूढ़ियों से मुक्त हो जांय, तो उनमें किसी विशालनद का प्रवाह आजाय, जो शताब्दियों से एकत्रित कूड़े करकट को बहा ले जाय। मनुष्य बहुत बड़ी सीमा तक अपनी इच्छा के अनुसार

कार्य करने में स्वतन्त्र वा स्वाधीन है। यदि तुमको प्रकृतिमाता का कोई ऋण चुकाना है, तो अब समय है कि तुम उससे उऋण हो जाओ—उसका ऋण निमटा दो। रोगापसार के साधन भी वही हैं जो स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए अपेक्षित हैं—रोगों से अच्छा होने और स्वास्थ्य को स्थिर रखने के साधन एक ही हैं। इस बात से इन्कार करना वितंडामात्र है। जिस दिन आनन्दोपभोग न किया जाय उसको व्यर्थ गया हुआ समझो—हमको प्रत्येक क्षण प्रसन्नता और आनन्दपूर्वक बिताना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता का कथन है—

"प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।"

अर्थात्—प्रसन्नता आनन्द) की प्राप्ति पर सब दुःखों का क्षय हो जाता है- सब दुःख चले जाते हैं। आज के दिन को आने वाले कल का ऋणी नहीं होना चाहिये-जो कुछ करना है आज ही कर डालो। आज का एक दिन कल आने वाले दो दिनों के बराबर है।

सब कोई जानते हैं कि जब कोई यन्त्र (इंजन आदि) बिगड़ जाता है और कोई यांत्रिक जन उसका निरीक्षण करके उसके किसी अंग (पुरजे) को टूटा हुआ पाता है, तो हम उस पुरजे के स्थान में दूसरा पुरजा डाल देते हैं और इसके बिना वह यंत्र चल नहीं सकता। किन्तु आजकल की शस्त्रोपचार चिकित्सा ऊपर के दृष्टांत में प्रदर्शित प्रकृति के रचनात्मक सिद्धान्त की समर्थक नहीं है। यही अवस्था विषैली रासायनिक औषधों की है।

आजकल चिकित्सा की भावना से स्त्रियों के अंग, स्तनग्रंथियां और गलशुण्डिका (Tonsils) आदि २ हमारे देहों में से काट कर निकाल डाले जाते हैं, किन्तु अभी तक इनके परिणामस्वरूप कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं है और मुझ को यह स्वीकार करने में संदेह (हिचकिचाहट) है कि आगे भविष्यमें भी इस कार्य में कोई सफलता मिल सकेगी। अधोगल-शुण्डिका (Adenoid) और उपांत्र (Appendices) जैसे अगों के व्यवच्छेदन-पूर्वक अपसारण के नाशक उपाय पाशविक कार्य हैं। कर्कटार्बुद (Cancer) तो अभी तक अविजेय है। मधुमेह (Diabities) ने अभी तक झुकने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई और राजयक्ष्मा (Tuber culusis) धृष्टता पूर्वक दमन का सामना कर रहा है। दंतपूयमेह (pyorrhoea) अब तक रक्त बहाते हुए मुख की कान्ति को बिगाड़ रहा है, किन्तु खेद है कि इस अपराध के आच्छादन के लिये दांतों को निरर्थक उखाड़ा जा रहा है। जिन मनुष्यों को कभी शस्त्रोपचार की शय्या (मेज = Table) पर लेटना पड़ता है, वे वहां की अनुभूत निरय-यन्त्रणा (नरक पीड़ा) की साक्षी दे सकते हैं। असीम लखोखा जीवन शस्त्रोपचार की बलि चढ़ रहे हैं। इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है। यह पुरानी कहावत है कि "डाक्टरों को वध का आज्ञापत्र (Licence) प्राप्त है" अपने पूरे रंग रूप में पत्थर की लकीर बनी हुई है और किसीको भी उनकी विज्ञान विशारदतामें सन्देह करने का साहस नहीं होता है। वे भूल वा भ्रम से रहित

हैं और उनका विज्ञान अलौकिक वस्तु है। इस युग में अभी तक कोई रसायनशाला रक्त का निर्माण नहीं कर पाई है। सूचिवेध (Injections) और विजातीय द्रव्याकरण (Innoculations) अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच सके हैं, किन्तु रक्तनिष्काशन (Blood letting) और विरेचक औषधियां (Purgatives) बहुत बड़ी सीमा तक शरीर को निर्बल बनाने का कार्य और भी अधिक करती चली जा रही हैं। नई औषधियां सज्जाप्रकारों (फैशनों=Fashions) की दौड़ धूप के वेग से आती और जाती हैं। किसी रोग की चिकित्सा तो देह की अस्वच्छता को निकाल बाहर करने से हो सकती है और यह कार्य शरीर में कोई नव द्रव्य भर कर नहीं हो सकता, किन्तु उसमें से कोई पदार्थ निकाल कर ही हो सकता है। अस्वच्छता वा मलों का क्षिप्र प्रतिकार उपवास करने और भविष्य में युक्ति-संगत विशुद्ध आहार के ग्रहणसे हो सकता है। प्रकृति प्रत्येक रोग को अच्छा कर सकती है, किन्तु वह प्रत्येक रोगी की चिकित्सा नहीं कर सकती है। औषधियों द्वारा रोग का दमन विनाशक प्रक्रिया है। चिकित्सा की इस भावना को, जिसका अर्थ पीछे धकेलना है, अपने मन से निकाल दीजिए और प्रकृति को रोग को अच्छा करने का अवसर प्रदान कीजिए। उसकी दया की अभ्यर्थना कीजिए। प्राकृतिक आहारों का सेवन कीजिए। अपने देहयन्त्र में समुचित क्षारीय द्रव्यों का ईन्धन डालिए और उसके विलक्षण परिणामों को तत्काल अवलोकन कीजिए। यह अभिमान पूर्ण अतिशयोक्ति नहीं है, किन्तु वास्त-

विकता है। ओषधियों के पक्षपाती सनातनी सम्प्रदाय का शासन गत तीन सहस्र वर्षों से चला आया है और अब समय आ गया है कि उसको विदा किया जाय और भविष्य जीवनों की रक्षा की जाय। यदि दुर्जनतोषन्याय से यह मान भी लिया जाय कि औषधियों से कोई और रोग उत्पन्न नहीं होते, तो भी औषधियां निरर्थक ही हैं, क्योंकि रक्त में निरर्थक द्रव्यों की वृद्धि करना महा मूर्खता है। औषधियों से रोग दूर नहीं होता, प्रत्युत उनकी मार खा कर अन्तर्हित हो जाता है—छिप जाता है।

फल वस्तुतः औषध और आहार दोनों हैं। "थोड़ा खाना और सुखी रहना" स्वास्थ्य और साफल्य का आधारभूत सिद्धांत है। यदि दो सप्ताह केवल एक ही प्रकार के फलों पर निर्वाह किया जाय तो वह रोगों को दूर भगा कर अमोघ स्वास्थ्य-साधक है।

साधारणतः लोग फलों को केवल जिह्वा-लौल्य की तृप्ति व स्वाद मनाने के लिये नियत आहार के अनन्तर खाते हैं, किन्तु वस्तुतः फल हमारे जीवन धारण के लिये हमारा मुख्य आहार है अतः उनको अन्य आहारों से अधिकतर मात्रा में प्रधान आहार के रूप में प्रतिदिन खाना चाहिये।

आज मैं आपको एक नई बात सुनाता हूं। हमारी नाड़ी नसों में बल आहार से नहीं आता है, प्रत्युत सुख की निद्रा हमारे देहों में बल का संचार करती है और रोगनिवारण औषधियों से नहीं होता, प्रत्युत इच्छा शक्ति ही प्रबल रोग निवारक है। आप

किसी मनुष्य को भरपेट स्वादु आहार खिलाते रहें, किन्तु उसे निद्रा न लेने दें तो उसका स्वास्थ्य अवश्य चौपट हो जायगा और यदि यही क्रम चिरकाल तक चलता रहे तो वह नितान्त निर्बल हो कर मृत्यु का ग्रास बन जायगा।

इसी प्रकार यदि औषध सेवन के साथ रोगी की इच्छा-शक्ति वा विश्वास काम न करे तो औषध त्रिकाल में भी उसको नीरोग न कर सकेगी। सांप बिच्छू आदि काटे के जो कोई रोगी छूमन्तर व झाड़फूंक से अच्छे हो जाते हैं, वह भी इस इच्छा-शक्ति का ही चमत्कार है। मंत्र प्रयोग तो एक ढोंग मात्र ही है। सफलता का रहस्य भी इच्छाशक्ति की प्रबलता और अपने उद्देश्य की दृढ़ता में निहित है। मनोबल की प्रेरक विद्युत्-शक्ति की आवश्यकता सर्वदा सर्वत्र सर्वोपरि है।

आमाशय (Stomach)

इस संसार में प्रत्येक पुरुष को यह प्रबल अभिलाषा रहती है कि उसको कोई मित्र मिले, जो उसका सहायक और आपदा-निवारक बना रहे। इसके लिये वह कभी २ अमित धनराशि का व्यय कर देता है और मनभाए मित्र पर उसका प्राणों से भी अधिक प्यार रहता है। परन्तु वास्तविक और गम्भीरदृष्टिसे देखा जाय तो उसका सब से बढ़ कर हितैषी परम–मित्र उसके पास पूर्व से ही उसके अपने ही देह में उसके आमाशय के रूप में विद्यमान है। मनुष्य का आमाशय यावज्जीवन उसका आज्ञा-पालक, सहायक, सेवक और पालक पोषक बना रहता है। वह

प्रतिदिन उसके भुक्त आहार को पचाकर—उसका रस बना कर उसको सारे शरीर में पहुंचा कर उसका पालन पोषण करता रहता है। यह कार्य वह शक्ति रहते, स्वसामर्थ्य भर करता रहता है। वह मनुष्य के आहार के अस्वाभाविक अप्राकृतिक और अहितकारक द्रव्यों को यथाशक्ति पचाने का पूरा प्रयत्न करता है, किन्तु जब उसमें इस कार्य की सामर्थ्य नहीं रहती और मनुष्य के आहार का अत्याचार बराबर बना रहता है, तो वह समय रहते उसको सावधान कर देता है तथा उसको और अधिक हानि से बचाने के लिये अपने अन्दर ठूंसे हुए असात्म्य-अप्राकृतिक आहारों को पचाने से मुकर जाता है - इन्कार कर देता है और इसकी सूचना अपने कृपापात्र मनुष्य को अपच की अस्वादु अम्ल (खट्टी) डकारों, मितली और वमन के रूप में दे देता है, किन्तु इस सामयिक सूचना के सुनी अनसुनी होने पर वह स्वयं नाना भयंकर रोगों-यथा आमाशय प्रदाह (Gastritis) और आमाशय कर्कटार्बुद (Cancer of stomach)—में ग्रस्त होकर मित्र के लिए अपने प्राणों की अन्तिम आहुति दे देता है। यदि आप स्वस्थ-प्रसन्न रहना चाहते हैं, तो अपने परम हितैषी, आंतरिक मित्र आमाशय को कभी अप्रसन्न न कीजिये—उस पर अत्याचार न कीजिए, उससे उसके सामर्थ्य से बढ़ कर कभी काम न लीजिए इस कार्य से उसका अनादर कभी न कीजिए। उसकी सामयिक सावधानता-सूचना पर समय रहते कान दीजिए और उसकी हित-सम्मति (हितमित सात्म्य आहार की नियमवर्तिता की सीख) को ग्रहण करके अपने भोजन का तदनुसार सुधार तत्काल कीजिए

अपने पास इस शिक्षारत्न को सदा सुरक्षित रखिए।

मनुष्य की जिह्वा उसके मुख की ड्योढ़ी की द्वारपाल (प्रधान प्रहरी=पहरेदार) है। उसका कर्तव्य शरीर में अप्राकृतिक द्रव्यों के आगे जाने में बाधा देना है। यदि अति तीक्ष्ण और कड़वे, कसैले, विषैले आहार मुख में ले जाए जांय, तो यह द्वारपाल विक्षोभ और विद्रोह मचाने लगता है। वह उनके उग्र स्वाद को सहने में असहमति वा अस्वीकारता प्रकट करता है, किन्तु यह सच्चा द्वारपाल अपना यह नियत कर्तव्य अपनी प्राकृतिक वा स्वाभाविक अवस्था में ही पालन करने में समर्थ रहता है। मनुष्य ने उसको अपने कर्तव्य का अनभ्यासी बना कर उसको आलसी बना दिया है और कर्तव्यच्युत कर दिया है। उस पर मिर्च, मसाले, मद्य, मांस आदि स्वास्थ्य-विनाशक द्रव्यों की भारी मात्रा को आगे ले जाने का इतना गुरुभार लाद दिया गया है कि वह स्वकर्तव्यपालन से सर्वथा विमुख और उसमें असमर्थ हो गया है। अब तो वह इतना बिगड़ गया है कि उसको स्वकर्तव्य विमुखता में ही सन्तोष और उसके विपरीत आचरण अप्राकृतिक द्रव्यों को उदर में पहुंचाने-में ही आनन्द आता है। इससे आपके स्वास्थ्य को जो क्षति पहुंच रही है और आपके जीवन में रोग रूपी जो कठिनाइयां आ रही हैं, उनका अनुमान लगाना भी आपके लिए अति दुस्तर और मेरे लिए वर्णनातीत है।

जन्तु-जीवन का मुख्य व्यापार ओषजनी करण (Oxidation) है—ओषजन (Oxygen) नामक तत्व के संयोजन

द्वारा आहार रस की रक्त में परिणति और मलों की दहनपूर्वक संशुद्धि है। जन्तुदेह (मनुष्य भी एक जन्तु ही है) को प्राकृतिक सजीव (सेन्द्रिय—Organic) क्षारीय तत्वों से परिपूर्ण आहार की आवश्यकता है। सिद्धान्ततः अग्नि पर पकाया हुआ भोजन (आहार) मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि इससे हमारे देहों के पोषण के लिए अपेक्षित सजीव लवण (Mineral salts) विलुप्त हो जाते हैं। अग्निपर पकानेसे भोजनके भोज्योज क. तथा ग (Vitamins A. and C) सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। कृत्रिम पदार्थ प्राकृतिक पदार्थ की तुलना नहीं कर सकते और मेरा विश्वास है कि यदि आप प्रकृति के पीछे चलें—उसके अनुयायी बनें—तो आज तक के सब नामों से संज्ञात और निदान द्वारा अभिज्ञात सब रोगों का सम्यकचिकित्सा समुचित आहार द्वारा ही हो सकती है। आहार और रोग में अविच्छेद्य व्यतिरेक सम्बन्ध विद्यमान है। आप स्वयं स्वस्वास्थ्य का निर्माण तो कर सकते हैं, किन्तु आप उसको कहीं से क्रय नहीं कर सकते। स्वास्थ्य संपत् का संचय वा संपत् का संरक्षण (Investment) है। वह संपत् का व्यय वा ह्रास (Expense) नहीं है। स्वास्थ्य रूपी संपत् का संरक्षण ही सच्चा सुव्यवस्थित व्यय वा सुप्रबन्ध (True economy) है। सब विघ्नबाधाओं का सामना दृढ़ता से करते रहो। सब रोगों का मूलारोपण आमाशय में ही होता है यदि किसी यन्त्रसे उसकी शक्तिसे अधिक काम लिया जाय, तो वह तुरन्त टूट फूट जाता है। यही दशा हमारे आमाशययन्त्र की है। आप आमाशय को भुला फुसला कर पथभ्रष्ट (कर्तव्य–च्युत) न

कीजिये, किन्तु उसके सच्चे, विश्वासी मित्र बने रहिए। पेटू कभी न बनिए। इसके दोषों से धर्मशास्त्र भरपूर हैं। सर्वश्रेष्ठ आदि धर्मशास्त्र मनुस्मृति का वचन है :—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—अति भोजन, रोगों को उत्पन्न करने वाला, आयु को घटाने वाला, सुख को हरने वाला पाप को बढ़ाने वाला और ससार में निंदित है, इस लिए उसको कभी न करना चाहिये।

रोग साधारणतः अस्वच्छता का फल है और वह शरीर में संचित मलों (विकृत द्रव्यों) को बाहर निकालने का साधनमात्र है। उसकी चिकित्सा उस अस्वच्छता का संशोधन है, जिसने क्षेत्र और बीज दोनों को दूषित (अस्वच्छ) कर दिया था।

औषधियां रोगाणुओं को तो मार सकती हैं, किन्तु उसके जिस विष ने उक्त रोगाणुओं को मारा है वह तो रोगी देह में पड़ा रह जाता है। जब हम यह कहते हैं कि ताप ताप को मारता है (Heat kills the heat) तो यह हमारी बुद्धि के दिवालिए-पन को सूचित करता है वा यह हमारी बुद्धि की खेदजनक व्याख्या है। यदि आप किसी आग लगे हुए घर की आग को बुझाने के लिए उस पर और आग डालने को कहें, तो आपको कोई पुरुष भी बुद्धिमान न समझेगा।

औषध-चिकित्सक प्रत्येक रोग को एक दूसरे से पृथक् और विभिन्न समझते हैं। उनकी सम्मति में फुफ्फुसप्रदाह

(Pneumonia = न्यूमोनिया), आंत्रज्वर (Typhoid fever), गलान्तर्प्रदाह Diphtheria), तालुग्रन्थिप्रदाह (उपजिह्विकाप्रदाह = Tonsilitis), उग्रवृक्कप्रदाह (Bright's disease, (यह रोग सन १७८६ से १८५८ तक जीवित एक अंग्रेज डाक्टर ब्राइट द्वारा निदान किए जानेके कारण उसके ही नामसे प्रख्यात है) और साधारण वृक्कप्रदाह (Nephritis) आदि २ का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

वे उत्तेजक (Stimulants) और दमन कारक (Depressant) औषधियों का विधान करते हैं, जो वर्तमान पीड़ाओं को तो, निस्सन्देह, तत्काल दबा देती हैं वा शांत कर देती हैं, किन्तु वस्तुतः भविष्य के लिये कोई दूसरा रोग खड़ा कर देती हैं। रोगों के लक्षण रोगों का कारण (Cause) नहीं हैं, किन्तु केवल उनके कार्य वा प्रभाव (Effect) हैं। वे भय की लाल झण्डी दिखला कर सहायता के लिए पुकार रहे हैं और शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए प्रकृतिमाता के प्रयत्नों के चिह्नमात्र हैं। हमको चाहिए कि हम इस पुकार को अनसुनी न करें वा उसका गला न दबा देवें। रोगों के लक्षणों (उपरितल के चिह्नों = Symptoms) की चिकित्सा की क्रिया वा उनके दबाने का उद्योग, रोग के एक स्वरूप को बदल कर, कोई और दूसरा रोग खड़ा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। केवल लक्षणों की चिकित्सा न कीजिए प्रत्युत देह में गड़बड़ के मूल तक पहुंचिए। यदि आप रोग का कारण हटा देंगे, तो रोग स्वयं हट जायगा। आप प्रकृति के नियमों का भंग न कीजिए और उसके प्रति अनुदारता का दृष्टि-

कोण धारण न कीजिये। प्रकृति अवास्तविक वस्तुओं के विरुद्ध विद्रोह मचाती है। जो चिकित्सक रोगों की चिकित्सा उनके बाह्य लक्षणों के पीछे चल कर करते हैं, वे इस चिकित्सा के छद्मवेष में वास्तविक रोग को देह के भीतर दबा रहे हैं। प्राकृतिक चिकित्सा विधि में आप प्रत्यग्र (ताजा) पवन और सूर्य देवता के प्रकाश (धूप) के साथ साथ प्राकृतिक युक्त आहार और संशोधन (स्वच्छीकरण विधि) को छोड़ कर और किसी क्रिया का विश्वास न कीजिए और न उनका अवलम्बन लीजिए। बाह्य लक्षणों के पीछे चल कर आभ्यन्तरीय रोगों की चिकित्सा करना भयानक और निरर्थक दोनों हैं।

रोगापसारण शक्ति (Immunity) प्राप्त करना, प्राकृतिक जीवनयापन (रहन सहन) द्वारा, आत्मरक्षा तथा रोग से संघर्ष के बल को विकसित करना है। जब शरीर में कोई गड़बड़ प्रतीत हो, तब उसको हटाने का सुन्दर सुगम उपाय उस दिन उपवास कर लेना है। जगन्नियन्ता परमेश्वर की ओर से हमको रोग के रूप में यह सूचना मिल रही है कि हमारे रक्त में कोई दुखद (विजातीय) द्रव्य मिल गया है और प्रकृति माता उसको बाहर निकालना चाहती है। उपवास से आपके शरीर को पूर्ण विश्राम मिल जायगा और आपका खोया हुआ बल आपको पुनः प्राप्त हो जायगा।

रोगी होना अपराध है और मेरी यह ध्रुव धारणा है और उसका आधार अपने आधीन रोगियों की चिकित्सा का सुदीर्घ

काल व्यापी मेरा पर्याप्त अनुभव है कि यदि आहार और व्यायाम से कोई रोग नहीं जाता है, तो वह असाध्य है। मैं तो किसी रोगी देह से तब ही निराश होता हूं, जब उसमें रोगों से युद्ध करने का बल विलुप्त हो गया हो। अधोगलशुण्डिका प्रदाह (Adenoids), कण्ठमाला (Scrofulous glands), अर्बुद (Tumours), कर्कटार्बुद (Cancers), राजयक्ष्मा (Tuberculosis) आदि आदि आज तक असाध्य समझे जाने वाले रोग वस्तुतः साध्य हैं और उनसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल धैर्य और मनोबल का आश्रय अपेक्षित है। विश्वास पर्वतों को भी हिला देता है। प्रत्येक प्रकार के रोगी से मेरी यही प्रार्थना है कि वह इन प्राकृतिक शिक्षाओं का सचाई से मनोयोग-पूर्वक पालन करे और साफल्य और सुखानन्द के साक्षात दर्शन कर लेवे। क्षय रोग (Consumption) से भी भयभीत न होना चाहिए। प्राकृतिक अचूक चिकित्सा से उसका भी उन्मूलन सम्भव है।

आजकल अधिकांश मनुष्य पुरानी पद्धतियों और गाथाओं के विश्वासी हैं वा अभिनव भ्रामक भावनाओं की कल्पना कर लेते हैं और यह संसार मूढ़ता की छत्रछाया में चुपचाप मन्द गति से चलता रहता है। मेरा पूर्ण निश्चय है कि भविष्य के बुद्धि-वादी विद्वान हमारी आजकल की बहुत सी अवैज्ञानिक अप्राकृतिक चिकित्सा प्रक्रियाओं से हमारे उनका पूर्वज होने के सम्बन्ध से लज्जित होंगे कि हमारे पूर्व पुरुष ऐसे वज्र मूर्ख (भोंदू) थे।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयमेव विधाता है और वह अपने ही प्रयत्न और परिश्रम का फल पाता है। वह स्वयमेव अपने आप अपना स्वामी है।

"नृदेहं दुर्लभं प्राप्य भोगाय तं युनक्ति यः।
आप्तैः प्रत्युतनुस्तस्य दर्शिता मंदभाग्यता।"

अर्थ—जो दुर्लभ मनुष्यदेह को पाकर उसको इन्द्रियों के भोगों में लगाता है, वह बड़ा मंदभागी है। आप्त पुरुषों ने ऐसा कहा है।

"आपदां कथितः पंथा इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः श्रेयषां मार्गः येनेष्टं तेन गम्यताम्।"

अर्थ—इन्द्रियों को वश में न रखना विपत्ति का मार्ग है और उनको अपने वश में रखना संपत्ति का मार्ग है इनमें से जो मार्ग तुमको अच्छा लगे, उसी को ग्रहण करो।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह पद्य, मेरे (अनुवादक) के किए हुए चौथे चरण के पाठान्तर पूर्वक सर्वथा स्मर्त्तव्य है।

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य," स्वास्थ्यन्तु परिरक्ष्यते (परिवर्धते)

अर्थ—जिसका आहार विहार समुचित (मर्यादित) है और जिसके काम (परिश्रम आदि पुरुषार्थ) मर्यादित हैं और जिसका सोना जागना नियमित है, उसका स्वास्थ्य स्थिर रहता है उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है।

स्वास्थ्य का सच्चा और सीधा मार्ग आदर्शगुणगर्भित और और मात्रामित आहार ही है। सारे संसार के मनुष्य मात्र चाहे किसी भी रंगरूप या सम्प्रदाय के हों, इन सप्त सिद्धांत रत्नों के जानने और उससे लाभ उठाने के अधिकारी हैं।

मनुष्य मरता नहीं है, प्रत्युत अपने आपको अपने कुकर्म से स्वयं मार डालता है। आहार अनागत प्रतीकारात्मक (Preventative) चिकित्सा (Medicine) का ऐसा शस्त्र है, जो सब औषधों (त्वगन्तर गदांकण = सूचिवेध = Injections तथा रेडियम [Radium] आदिकों) में सबसे सस्ता (स्वल्प व्यय साध्य) और एकमात्र विश्वसनीय (भरोसा करने योग्य) है। उस की सफलता का निश्चय वर्णनातीत है, तो रोग को यथासम्भव मन से भुला दीजिये और विशुद्ध आहारके द्वारा देहको शुद्ध कीजिए। प्रत्यग्र (ताजे) पवन में गहरे श्वास लीजिये। मन को वश में रखने का अभ्यास डालिए और मन भर कोई सुन्दर सुरीला गान गाइए। गान से फुप्फुसों (फेफड़ों) हृदय तथा पाचन क्रिया का व्यायाम हो जाता है। मनोहर अट्टहास आमाशय के लिये बलप्रद है और आनन्द सारे सद्गुणों का स्रोत है। जब आपका कोई काम बिगड़ जाय और आपको चिन्ता आदि कष्टों का सामना हो, तो उन दुःख के क्षणों को हंस कर बिताइये, यही इसका पूरा प्रतीकार है। एक कहावत है कि दिन में कम से कम, एक बार खिलखिला कर हंस लेने से रोग पास नहीं फटकता है। दिनमें एक बार भर पेट हंस लेना आवश्यक है। मुसकराते रहने के

अभ्यासी बनिये। यदि आपको कोई और हंसी के लिए न मिले तो दर्पण में अपना मुख देख कर ही उसकी ही हंसी उड़ा लिया करें। इससे जीवन के रस में प्रवाह बना रहता है। इससे आप सदा युवा बने रहेंगे और आप को दीर्घ आयु प्राप्त होगी।

मनुष्य फलाहारी जन्तु है और मानुषी-जीवन के पूर्ण-स्थैर्य (बने रहने) के लिये वानस्पतिक आहार पूर्ण पर्याप्त है प्रसिद्ध जीवनशास्त्री डार्विन महोदय (Mr. Darwin) के मतानुसार मनुष्य बन्दर (वानर—विकल्पेन नरः) से मिलता जुलता है और यदि हम बन्दर के आहार का विचार करें, तो उसका मुख्य आहार फलफूल और शाक ही पाया जाता है। हमारे देह के संचालक यन्त्र (इञ्जन = Engine) हमारे आमाशय की प्राकृतिक रचना ही ऐसी है कि वह विशेष प्रकार के किन्हीं आहारों को ही पचा सकती है। अप्राकृतिक आहार हानिकर हैं और सदा के लिए परित्याज्य हैं।

जिस मतमें प्राणियों का रक्त पात विहित है और जो मत हमारे जीवन धारण के समानधर्मा जीवों के प्रति दया और न्याय का निषेध करता है, वह विगर्हित (निन्दनीय) ही है। मांसाहारी जन अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को कभी विकसित नहीं कर सकते। गत योरोपीय महायुद्ध के पश्चात पेरिस (Paris) में एकत्रित बड़े बड़े भारी उपाधिधारी वैज्ञानिकों ने घोषणा की थी कि सौ में से निन्यानवे मृत्युएं केवल मांसभक्षण से होती हैं।

मांस सब द्रव्यों की उत्पादन प्रक्रिया का द्वितीय परिणाम है

(Meat is a second hand product), अर्थात वनस्पति खाने वाले जन्तु, जिन वनस्पतियों का आहार करते हैं, उनसे ही उनके देहों में मांस बनता है। इस प्रकार मांस, उत्पादन प्रक्रिया का द्वितीय परिणाम हुआ-प्रथम परिणाम तो वनस्पतियों (उद्भिजों) की उत्पत्ति प्रक्रिया है, जो सीधे भूमि से (भूमि को भेद कर) उत्पन्न होते हैं। इस द्वितीय परिणाम वाले मांस में उसकी प्राप्ति के लिये मारे गये पशु पत्नी जन्तुओं के देहों में मरणसमय विद्यमान दोष भी मिले रहते हैं। इनमें मूत्राम्ल (Uric acid) विशेषत: उल्लेखनीय है, जो प्राय: रोगों—आमसन्धिवात (गठिया = Rheumatism) और क्षुद्रसन्धिवात वा अंगुष्ठसन्धिवात (Gout) आदि का मुख्य उत्पादक कारण है।

मांस भक्षण का मुख्य कारण हमारे भ्रामक विचार हैं। अभिनव आहार शास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य शक्ति और ओज की रक्षा के लिए मांस की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत इसके विपरीत वह असंख्य रोगों का घर है और आयु को घटाता है। अत: संबद्ध—वैज्ञानिक—आहारविचारसमिति (The Interallied Scientific Food Commission) ने यह निर्धारण किया था कि मनुष्य की शारीर क्रिया के सम्यक् संचालन के लिये मांसभक्षण की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मांस में के मांसपोषक द्रव्यों (Protiens) का स्थान अन्य जान्तव मांसपोषक द्रव्य (Other protiens of animal origin) यथा दुग्ध, नवनीत, (मक्खन) में के तथा वनस्प-

तियों में के मांसपोषक द्रव्य (Protiens) ले सकते हैं। इस के अतिरिक्त वैज्ञानिक रीति से यह भी सिद्ध हो गया है कि यदि मनुष्य दुग्ध और शाक का आहार पर्याप्त मात्रा में करे, तो वह अण्डों को भी लाभपूर्वक छोड़ सकता है। कई आहारशास्त्रियों का तो यह भी मत है कि प्रौढ़ (Grown up) पुरुषों को दुग्ध तथा तज्जन्य पदार्थों की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह चिपचिपाहट को उत्पन्न करने वाले (Mucusdiet) हैं, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। दुग्ध तो, विशेषतः माता का दुग्ध, स्तनंधय शिशुओं के लिये अपेक्षित है।

ओक (Oak=शाहबलूत) के फल एकार्न (Acorn) में सन्निहित सामर्थ्य का विचार कीजिये। जब यह भूमिगर्भ में बो दिया जाता है, तो उससे अंकुर फूट कर जो पादप (पौधा) उत्पन्न होता है वह प्रौढ़ हो जाने पर अपने फलों के बीजों से अपने ही समान, अनेक पादप उत्पन्न करता है। इसकी सन्तति बढ़ती चली जाती है। किन्तु इसके विपरीत, यदि आप किसी भेड़ को भूगर्भ में दबा देवें, तो वह सड़ने और दुर्गन्ध उत्पन्न करने के अतिरिक्त अपने समान किसी सजीव प्राणी को जन्म न दे सकेगी।

जब तक आप जीवित हैं, सत्य का ग्रहण विवेक पूर्वक कीजिए। भ्रम के भूत (शैतान=Devil) के वशवर्ती न बनिए। उसका वश आप पर न चलने के कारण उसको लज्जित करते रहिए।

यदि मनुष्य का अन्य प्राणियों से वैर भाव न रहे, तो वे

भी उससे वैर न करें। प्रेम सब से बड़ा गुण है। बलवान बनो, भद्र बनो तथा सत्यपरायण रहो।

मुझ को सब प्रकारके वधों से घृणा है और मेरी आकांक्षा है कि निर्दयतापूर्ण आघात और वध से सब किसी की रक्षा हो। मनुष्य की यह घोर कृतघ्नता है कि वह मनुष्य जाति के ऐसे हितकारी, अमृतस्वरूप, सुमधुर दुग्ध देने वाले गौ आदि प्राणियों का नृशंस वध करता है।

संप्रति प्रचलित, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने और आलस्यमय जीवन विताने की नीति सफल समर्थ पुरुषों का कुछ भी भला नहीं कर सकती। अब आपको आहार के आचारशास्त्र के स्पष्ट प्रमाण समुपलब्ध हैं, तो आपका कर्तव्य है कि आप उनका तन्मयतापूर्वक पूर्ण पालन करें। मनुष्य ने चिरकाल से सन्मार्ग पर चलना छोड़ दिया है और यदि अब भी उसका यही दुराग्रह बना रहा, तो वह स्वयं निंदा और जुगुप्सा का पात्र बनेगा मांसभक्षण दुर्व्यसनमात्र है।

मनुष्य के लिए प्रकृति के दिए वानस्पतिक आहार से बढ़ कर और कोई आहार द्रव्य नहीं है। इसमें केला, शर्कराकन्द (शकरकन्द), सोरण (जिमिकन्द), आलू, कचालू, आदि; गेहूं आदि शूकधान्यों का काम देते हैं। शुष्क फल, यथा अक्षोट (अखरोट), बादाम, पिस्ता, मूंगफली नारियल आदि घृत और तैल का काम निकालते हैं। पीनेके लिए निर्मल, स्वच्छ ताजा जल और फलों का विशुद्ध अविक्षुब्ध रस विद्यमान है। मिठाई का

आनन्द, मधु (शहद), खजूर और गन्ने के रस से मिल सकता है। इस सब आहार समूह में षड्रस (छहों स्वाद) विद्यमान हैं। यही मनुष्य का आदर्श आहार है और प्रत्येक देश और जलवायु का निवासी इसमें से अपने लिए यथारुचि अपना अपना आहार चुन सकता है।

विगत महायुद्ध में मुझ को, काकेशस पर्वतमाला (Caucasus Range) में "कस्र-ए-शीरीं" (मधुप्रासाद) नामक स्थान के निवासियों से मिलने और वार्तालाप का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे लोग साधारणतः फलों पर ही जीवन-निर्वाह करते हैं।

रोटी वे केवल बृहस्पतिवार को ही खाते हैं। उनमें बहुत से ऐसे भी जन हैं, जो रोटी बिल्कुल नहीं खाते। वे ऐसे सुन्दर और सुरूप हैं कि देवता भी उन पर मोहित हो जांय। वहां के स्त्री पुरुष मानो साक्षात् देवी देवता हैं। सहस्र रजनी चरित (अलिफ लैला=Arabian Nights) में वर्णित गाथाओं के मनुष्य यही हैं। वे संसार के सुंदरतम रूपवान मनुष्य हैं।

स्वर्गोपम काश्मीर अपने सुन्दर उद्यानों और प्रकृतिके शोभा-प्रद दृश्योंके लिए विशेष विख्यात है। काश्मीरियोंका मुख्य आहार फल ही हैं। महात्मा गांधी, जी० बर्नार्ड शा (G. Bernard Shaw), सुविख्यात हिटलर (Hitler) और मुसोलिनी (Mussolini) फल, शाक और दुग्ध का ही आहार करते हैं। उनको कोई कायर नहीं कह सकता। आजकल की सभ्यता ने आहारों के तथा कथित अतिसंशोधन (Refining) क्षारीय द्रव्य

विवर्जन (Demineralizing), और क्रमिक कुमिश्रण (खमेल=मिलावट=Adulteration) द्वारा उनको उनके शरीरपोषक तत्वों से शून्य करके मनुष्यों के स्वास्थ्य का नाश कर दिया है। यदि मनुष्य यह सीख जाय कि उसको कितना और क्या खाना चाहिए तो वह अपनी मनोकामना प्राप्त कर लेवे। पूर्व कभी स्वप्न में भी दुर्लभ आनन्दपूर्ण दीर्घजीवन उसकी सब कठिनाइयों को दूर भगा देवे और मानुषी भ्रातृभाव को सब कोई शीघ्र समझने लगें, रक्तचाप-वृद्धि (Blood-pressure) का विलोप हो जाय, युद्ध बन्द हो जांय, स्वार्थपरता चली जाय और सर्वत्र प्रेम का संचार हो। मेरी सम्मति में हमारे पिछले सब पापों से छुटकारा पाने की यही एक व्यापक सर्वौषधि (Panacea) है। साधारणत: हम अत्यधिक और बहुत अधिक बार और अति अविवेकपूर्वक, आहार करते हैं। प्रौढ़ पुरुषों के लिए दिन में तीन बार, शिशुओं के लिए चार बार और स्तनंधयों (दूध पीते बच्चों) के लिये पांच वा छः बार का आहार पर्याप्त है। इसके द्वारा पूर्ण पोषण की प्राप्ति होती है। मेरी आंतरिक अभ्यर्थना है कि ५० वर्ष से ऊपर की आयु के मनुष्य दिन भर में दो बार वा मध्याह्नोत्तर दो बजे केवल एक बार के भोजन पर सन्तोष करें। आजकल चौबीस घण्टे की अवधि में साधारण काम करने वाले पुरुषों के लिए आध सेर (एक पौंड) और स्त्रियों के लिए छः छटांक (बारह औंस) आहार पर्याप्त सिद्ध हुआ है। शारीरिक आवश्यकताओं से अत्यधिक आहार करना कार्यकारिणी शक्ति (Energy) के स्रोत को सुखाता है।

आहार विषयक आधुनिक अन्वेषणाओं के परिणामस्वरूप यह सिद्ध हो चुका है कि आजकल हम साधारणतः भोजन की जितनी मात्रा खाते हैं, उसमें से केवल एक तिहाई का रक्त बनता है और केवल उतना ही हमारे जीवन को सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त है, शेष दो तिहाई आहार विषों (Toxins) को उत्पन्न करता है। अपना यह आदर्शवाक्य (Motto) बना लो कि तुम सामर्थ्य-प्राप्ति के लिए ही आहार करो ('Eat to get fit") और देह की स्थूलता के लिए कभी आहार न करो ("Not eat to get fat")। संदेहदोला में झूलते रहना आपत्तिजनक है। यह मकड़ी का जीवन है, जो अपने जाले के तारपर झूलती रहती है।

—दांत—

दांत रदिन (Dentin) नामक एक पड़तयुक्त (Tabuler) पदार्थ से बने हुए हैं। ये रुचक (Enamel) नामक एक कठोर पदार्थ के पड़त से आच्छादित हैं। यदि यह ऊपर का आच्छादन (पड़त) क्षत विक्षत हो जाय—इसमें दराड़ें पड़ जांय, तो वह फिर नहीं बन सकता। दांत के मध्य में एक गह्वर (खोखला स्थान) होता है, उसमें दंतमज्जा (Tooth pulp) भरी रहती है। दांत के तीन भाग होते हैं—१. दंतमूल (Fang) २. ग्रीवा (Neck) ३. शिखर (Grown)। स्तनंधयों (दूध चूखते बच्चों) के दूध के दांत छः से लेकर आठ मास तक की आयु में निकलने प्रारम्भ होते हैं और दो वा ढाई वर्ष की आयु तक निकलते रहते हैं। स्थिर दंत (Parmanent teeth) पांचवें वर्ष से पीछे निकलते

हैं और उनकी पूरी बत्तीसी सत्रह से पच्चीस वर्ष तक की आयु में पूरी हो जाती है। स्थिर दांतों में सब से अन्त में निकलने वाले पश्चिम चर्वणक (Molars हैं, जिनको बुद्धिदंष्ट्रा (अकल की दाढ़=Wisdom Teeth) भी कहते हैं और जो इक्कीस वर्ष की आयु से पीछे निकलते हैं। स्तनंधयों के दुग्धदंतों की संख्या बीस है और प्रौढ़ पुरुषों के स्थिर दंत बत्तीस होते हैं। दांतों को अपने मूलों (जड़ों) को, बढ़वार की पूर्ति के लिए बढ़ते रहने में, कम से कम बारह वर्ष लगते हैं। जबड़ों की अस्थियों की बढ़वार के लिए भोज्यौज क. (Vitamin A), दंतवेष्टों (दंतमांस=मसूड़ों=Gums) के स्वास्थ्य के लिए भोज्यौज ग. (Vitamin C), दांतों को खटकित करने (Calcifying) और कठोर बनाने के लिए भोज्यौज घ. (Vitamin D) का सेवन अपेक्षित है। यह तीनों भोज्यौज फलों और शाकों में सुलभ हैं। मांसभक्षण दांतों के लिए महाहानिकारक है। स्वस्थ दंतवेष्टों (दंतमांसों=मसूड़ों) का रंग हलका गुलाबी होता है, लाल नहीं होता है। यदि वे लाल होने लगें तो यह रक्तस्राव का प्रारम्भिक चिह्न है और उनके तन्तुओं (Tissues) के रुग्ण होने का सूचक है। दांत खटिक (Lime) और स्फुट (Phosphorus) से निर्मित हैं। पुराने समय के मनुष्यों के दांत मृत्युपर्यन्त अत्रटित बने रहते थे, परन्तु आजकल किसी विरले जनके ही दांत अच्छे और पूरे मिलेंगे। बिना मीठा डाला हुआ धारोष्ण दूध, समग्र शूकधान्य (चोकर युक्त गेहूं चना आदि के आटे की रोटी, गेहूं का दलिया, छिलके सहित दालें) ताजे शाक और फल तथा भोजन के ग्रासों को भले

प्रकार चबा कर निगलना दांतों की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ग्रासों को भले प्रकार चबाने से दांतों का व्यायाम हो जाता है और प्रत्येक ग्रास को बत्तीस बार चबाने के विधान में कुछ भी अतिशयोक्ति (बढ़ावा) नहीं है। मृदु (मुलायम) आहार, जैसे हलवा आदि खाने में दांतों को कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता और उनकी नाड़ी नसों में व्यायाम के अभाव से रक्त का संचार सम्यक् नहीं होने पाता, जिससे वे निर्बल पड़ कर बिगड़ जाते हैं। गन्नों को चूसने और कठोर छिलके के फलों, यथा सेब, नाशपाती तथा अमरूद आदि को छिलके सहित खाने से दांत दृढ़ होते हैं। कठोर आहारों के चबाने से दांतों में कोई रोग नहीं होता। भोजन के अंत में शाकों को चबा कर खाने से दांत स्वच्छ हो जाते हैं और इससे दंतवेष्टों में के तन्तुओं के रक्तसंचार को भी सहायता मिलती है। जिह्वा को दिन में कई बार दांतों और मसूड़ों पर दबा कर फेरने से उनकी मर्दनक्रिया (मालिश) हो जाती है। इससे दांत दंतपूयमेह (Pyorrhoea) रोग से बचे रहते हैं। खेद है कि मनुष्य अब भी, युगों से चले आते हुए प्रकृति के साथ पुराने युद्ध में कठोर संघर्ष करता चला जा रहा है। वह अपनी मूर्खता से सच्चे दांतों को खोकर झूठे दांतों (False Teeth) से अपना काम चला रहा है। जिन मनुष्यों के दांत गिर चुके हैं, उनको चाहिये कि वे गूदे वाले पदार्थों, फल आदि के, ग्रासों को मुख में कुछ देर तक रख कर उनको जीभ से इधर उधर चलाते रहें। इस क्रियासे पाचक लालारस अधिक उत्पन्न होगा और उससे उनके आहार के पाचन में पर्याप्त सहा–

यता मिलेगी। मनुष्य के दांत मुख की शोभा बढ़ाने वा दिखलावे के लिए नहीं बनाए गए हैं। उनके लिए प्रतिदिन विशेष रक्षा और समुचित आहार की आवश्यकता है। प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल और सोते समय मुख और दांतों को कुछ लवण मिले हुए जल से स्वच्छ करने का नियम बहुत अच्छा है और इसका पालन दृढ़तापूर्वक करना चाहिए। यह सस्ता और प्राकृतिक मंजन है। यदि दांतों में पीड़ा हो, तो कुछ काल तक कागजी लीमू (Lemon) का रस मुख में रखना चाहिए और उसको पीड़ित दांतों पर लगाना चाहिये। यह उपचार कई बार किया जाय तो इससे दंत पीड़ा बिल्कुल चली जाती है। इसके लिए लीमू के रस में जैतून का तेल (Olive oil) की तत्तुल्य मात्रा मिला कर ग्रीवा और कपोलों पर मली जाय, तो इससे दांतों की पीड़ा तत्काल मिट जाती है।

आहार की इच्छा (भूक) आमाशय में प्रतीत नहीं होती है, किन्तु उसका अनुभव मुख में होता है। जिसको आजकल भूक कहा जाता है, वह प्रायः झूठी भूक (बुभुक्षाभास) होती है और नाना प्रकार के आहारों के लिए इच्छा (वासना मात्र है, वह अधिकांश हमारे अभ्यास (Habit) पर निर्भर है। यह अभ्यास भी हमारा अपना ही डाला हुआ है। झूठी भूक, शोक उद्वेग, चिन्ता तथा रुचिविपर्यय के कारण दूर हो सकती व घट सकती है। हमारे डाले हुए अभ्यास से उत्पन्न भूक वा भोजन की इच्छा, भोजन के नियत समय पर ही नित्य प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविक भूक का प्रादुर्भाव वास्तविक आवश्यकता के समय पर

ही मुख में होता है और उस समय मुंह से पानी टपकने लगता है, जिसको साधारण बोलचाल की भाषा में "मुंह में पानी भर आना" कहते हैं। एक वा दो दिनके उपवास के पश्चात वास्तविक बुभुक्षा सच्ची क्षुधा (भूक) का अनुभव होता है। वास्तविक बुभुक्षा तो प्रकृति की स्वाभाविक प्रेरणा (Intinct) है। प्रत्येक मनुष्य स्वरुचि के अनुसार कृत्रिम क्षुधा (बुभुक्षाभास) को उत्पन्न कर लेता है और यदि वह उसका वशवर्ती होकर अपने आपको नष्ट होने देता है, तो वह अपनी उत्पन्न की हुई वस्तु से ही अपना नाश अपने आप कर रहा है। इस बुभुक्षाभास का दमन कीजिए। वास्तविक बुभुक्षा की गुदगुदाहट (Pangs of hunger) का अनुभव लगातार होता रहता है और उसका लोप मृत्यु पर्यन्त नहीं होता है। बुभुक्षाभास अभ्यास का परिणाम है और वह आहार वा औषधों की अस्वाभाविक (Abnormal) लिप्सामात्र है। वह लगातार नहीं है। यदि हम उसकी मांग को पूरा न भी करें, तो वह चली जाती है। वास्तविक बुभुक्षा आहार के लिए प्रकृति की पुकार का शब्द है और उसको किसी अन्य स्वादवर्धक वस्तु (Sauce) की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयमेव स्वाभाविक (प्राकृतिक) स्वादवर्धक वस्तु है।

क्षुद्र पशु खाने से पूर्व अपने अपने अहार को नाक से सूंघ लेते हैं और यदि वह उनको नहीं रुचता है, तो उसको नहीं खाते हैं। इस विषय में मनुष्य पशुओं से भी गया बीता (हीनतर) है। वस्तुतः मनुष्य का आमाशय भोजन से रिक्त (खाली) दशा में उसकी अपनी मुष्ठी के आकार का होता है,

किन्तु वह आवश्यकतानुसार वस्तिगह्वर (Pelvis) के अर्धभाग तक फैल सकने में समर्थ है। अतिभोजन और मूर्खतापूर्ण भोजन आजकल के सबसे बड़े घोर पाप हैं और हमको इन पापों का दुर्व्यसन पड़ गया है। अतिभोजी जन किसी दारुण रोग में ग्रस्त हो कर कदाचित ही बचते हैं। हृष्ट-पुष्ट देह हमको बहुधा धोखे में डाल देती है। देह की स्थूलता प्रायः क्षय (Consumption) और बहुत से अन्य जीर्ण रोगों की अग्रदूती (लैनडोरो = Forerunner) है। उदर को आहार से ठसाठस भरने की अपेक्षा तो प्रायोपवेशन (भूके मरना) अधिक अच्छा है। हम जब कभी आहार करें, हमको वही आहार खाना चाहिए जिसको मुख में चबाने की आवश्यकता पड़े और हमको चाहिए कि हम उसको धीरे धीरे भले प्रकार चबाकर कण्ठ से नीचे उतारें। आप अपने मुख के ग्रास को, जितने अधिक समय तक अपने मुख में रखेंगे, वह उतना ही मिष्टतर और स्वादुतर बन जायगा। भोजन को शीघ्र शीघ्र निगलते जाने की लत निन्दनीय है। "पेय (तरल) आहारों को खाना और कठोर आहारों को पीना" सुन्दर सिद्धान्त है (Eat tbe liquids and drink the solids is a sound formula)। जल्दी जल्दी खाने, बार बार खाने और अत्यधिक खाने का कुछ भी फल नहीं निकलता है। भूख रख कर खाना सदैव सुरक्षित सुमार्ग है। अतिभोजन को संक्रामक रोग समझो और उसकी अपेक्षा प्रायोपवेशन (भूके मरने) तक से न डरो।

रसीले फलों, शाकों के सलादों, अखरोट आदि की गिरियों

और दुग्ध के आहार से मनुष्य देह का पूर्ण पोषण हो सकता है। अतिभोजन से ही स्वास्थ्य को आघात पहुंचता है। इञ्जन में आवश्यकतानुसार ईन्धन वा कोयला डालने के नियम को अपना आदर्श बना कर जीना सीखो। जिह्वालौल्य वा स्वाद कल्पित वस्तु है और सच पूछो तो वे अपवित्र और गर्हित कार्य हैं। भोजन करते हुये दांतों से पूरा काम लेना अत्यावश्यक है। मुख के प्रत्येक ग्रास को उस समय तक भले प्रकार चबाते रहना चाहिए जब तक कि उसका तरल न बन जाय और जब तक मुख में उस का कुछ भी भाग रहे, दूसरा ग्रास नहीं लेना चाहिए। चबाने से मुख में की लालारस की ग्रन्थियों (Salivary glands) की क्रिया बढ़ जाती है और वे लालारस को अधिक मात्रा में स्रवित करतीं (चुआती) हैं और उससे पाचन में इतनी अधिक सहायता मिलती है कि उसको बहुत थोड़े मनुष्य जानते हैं। जो मनुष्य आहार को भले प्रकार चबाता है, वह कभी भी अतिभोजन का अपराध नहीं कर सकता। भोजन को यथा-सम्भव अधिकाधिक समय तक मुखमें रखनेसे उसमें सर्वोत्तम गुणों का आधान हो जाता है—उसमें सर्वोत्तम गुण आ जाते हैं। लालारस की उत्पत्ति का उद्देश्य सर्वथा वांछनीय है और यही पोषण तथा पाचन की प्रथम सीढ़ी है। यह पुरानी कहावत कभी न भूलनी चाहिए कि "भरे हुये मुख वाला मनुष्य आनन्द से भरपूर रहता है" ("Mouthful joyful") अर्थात् खाते हुए मुख खाली न रहना चाहिए, उसको मुख के ग्रास से चबाते हुए भरे रखना चाहिए। प्रकृति ने वस्तुतः हमारे दांतों को हमारे आहार को

पीसने के लिये चक्की (Mill) बनाया है और जिह्वा (जीभ) चक्की के उस अंग (पुरजे) (Mill hand) का काम देने के लिये है, जो पीसे जाने वाले पदार्थ को चक्की के पाटों में को बार बार इकट्ठा करके लाता है।

आजकल अमरीका में अन्वेषणों द्वारा यह निर्णय किया गया है कि दांतों की क्षीणता का कारण स्ट्रेपटोकाकस (Strepto-coccus) नामक एक कीटाणु है। इसका पोषण अप्राकृतिक निःसार (Degraded) शर्करा (Sugar) तथा श्वेतसार (Starch) जैसे अल्पाग्निवर्धक (कर्बोज = Carbohydrates) वर्ग के पदार्थों से होता है और वह मुख्यतः शाहबलूत (Oak) के फलों (Acorn), जौ (Oat) और गेहुओं में पाया गया है।

स्वपथप्रदर्शक के रूप में प्रत्येक मनुष्य को टटके (ताजे) वा सूखे हुए फलों, शाकों के सलादों तथा दुग्ध से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए, किन्तु यह आचरण प्रधानता देने योग्य होने पर भी (श्रेयस्कर होने पर भी), सबके उसपर तुरन्त चलने की आशा करना दुराशा मात्र है—युक्तिसंगत नहीं है। इस लिये यदि शूकधान्यों (Cereals) वा शिंबिधान्यों (Legumes) को सुखा कर, संग्रह करके, छिलकों सहित पका कर खाया जाय वा उनका रस पिया जाय, तो मुझको कुछ आक्षेप नहीं है। उष्णता (Heat) और ओज (Energy) के लिये अपेक्षित न्यूनता की पूर्ति बादाम आदि की गिरियों वा वनस्पति तैलों से हो सकती है और वे वस्तुतः शूकधान्यों वा शिंबिधान्यों के भी स्थानापन्न हैं।

उनका भी समावेश प्रतिदिन के आहार में होना चाहिए। केले और शकरकन्द, श्वेतसारात्मक आहारों के सर्वोत्तम स्थानापन्न हैं। कोई भी श्वेतसारमय आहार जल के साथ न खाना चाहिए। प्रत्येक साधारण व्यक्ति के आहार के पांच में से चार भाग फलों और शाकों के होने चाहिएं और केवल पांचवां भाग मांसपोषक तत्व (Protien) श्वेतसार (Starch) और स्नेहद्रव्य (चिकनाई=Fat) का होना चाहिए। प्रातराश न करने का नियम सुन्दर है। चाय के पान (पीने) के समय कुछ न कुछ खाने का व्यसन नवीन सभ्यता का अभिशाप है और उससे तुरन्त बचना चाहिए। चाय के साथ में कुछ भी न खाना चाहिए। यदि आपको वास्तविक क्षुधा न हो, तो कदापि कुछ भी न खाइए। यदि आप इस शिक्षा का आचरण करेंगे, तो कुछ ही काल में आपको चमत्कार दिखलाई पड़ेंगे।

जब आप रुग्ण हों वा चिंतित (उदास) हों, तब भी कुछ न खाइए। यदि आपको प्रतिश्याय (जुकाम=Cold) हो गया है; तो आपका शरीर केवल विषों को निकालने के प्रयत्न पर उद्यत है, इस लिए तुरन्त आहार रोक दीजिए और जब आपका देह भोजन के लिए पुनः प्रस्तुत होगा, तो आप तुरन्त वास्तविक क्षुधा (सच्ची भूक) का अनुभव करेंगे।

—जल—

जल प्रकृति की देन है। वह चाहे शीतल हो या तप्त, किंतु स्वच्छ और हलका (Soft) होना चाहिये। उसको स्वच्छ दशा में

घूंट घूंट पीना चाहिए। खड़े होकर जल कभी न पीना चाहिए। भोजन के साथ भी जल न पीना चाहिए अर्थात् पानी के सहारे आहार को उदर में नहीं उतारना चाहिये। उसको दो आहारों के मध्य में कम से कम एक से दो घण्टे तक आहार के पीछे पीना चाहिये। कैसे आश्चर्य की बात है कि जब कभी पके हुए भोजन पर भूल से अकस्मात् पानी पड़ जाय तो हम उसको सामग्र्येण (सब का सब) छोड़ देते हैं-कभी नहीं खाते, किन्तु प्रायः १०० में से ६६ साधारण मनुष्य भोजन के साथ जल पीने के अभ्यासी हैं। हम अपनेको सब जन्तुओं से बुद्धिमान कहते हैं, किंतु हमारा यह कथन न्यायोचित नहीं है। इस भूमण्डल पर कोई भी जन्तु आहार के साथ जल नहीं पीता। आहार के साथ तरल या पेय पदार्थों के प्रयोग से आमाशयिक रस पतला हो जाता है और निर्बल पड़ जाता है तथा उससे आमाशय फैल जाता है। हमारे देह में ७० प्रतिशत जल है, जिसमें से १० प्रतिशत प्रतिदिन व्यय हो जाता है और हमें इसकी पूर्ति करनी चाहिए। प्राचीन काल से चिकित्सकों में सब सम्प्रदाय तप्त जलपान को रक्त में के मल-संघात से छुटकारा पाने के लिए उपयोगी और समुचित चिकित्सा मानते रहे हैं। वह आंतों में एकत्रित मलों को भी ढीला कर देता है और मृदु विरेचक (Milk laxative) है। बहुत से मनुष्यों ने प्रातः बिस्तर से उठते ही तप्त-जलपान को बद्धकोष्ठ का उत्तम प्रतिकार पाया है और वह बलप्रद भी है। जब जल पिया जाय तो उससे पीछे एक घण्टे तक कुछ न खाना चाहिए और न उक्त जल में कुछ मिलाना चाहिए, क्योंकि जल

को पाचन की कुछ अपेक्षा नहीं है और वह आमाशय के सूक्ष्म कोष्ठकों (Cells) में को होकर तुरन्त रक्त में मिल जाता है। न बुझने वाली प्यास की दशा में जो सदैव आमाशय के दोष के कारण होती है, तप्त जल के कुछ घूंट अच्छा काम देते हैं। बर्फ (Ice) सोडावाटर और शर्बत आदि सब पेय हानिकर हैं और बिल्कुल घृणित एवं त्याज्य हैं। चाय, कहवा (Coffee) कोकोआ (Cocoa) और अन्य उत्तेजक अनावश्यक पदार्थ अम्लता (Acidif) उत्पन्न करते हैं। जो जातियां उनका प्रयोग करती हैं, उनके स्वास्थ्य को उनसे अकथनीय हानियां पहुंचती हैं। भारी (Hard) जल में कई क्षारीय द्रव्य (Mineral) होते हैं, इस लिए उसे उबाल कर पीना चाहिये। नदी वा कुएं का जल भी अच्छा है। यदि प्यास न हो तो जल कभी न पीना चाहिए। प्रतिश्याय के रोगियों को अत्यन्त प्यास लगने पर थोड़ी २ मात्रा में जल पीना चाहिए।

हलके और भारी जल का विश्लेषण (Analysis)

हलका जल—शैल (Cilica) ·०६ भाग, लोह (Iron) ·०३ भाग, खटिक (Calcium) ·५६ भाग, मग (Magnesium) ·१६ भाग, सोडिम (Sodium) ·५१ भाग।

भारी जल—खट कर्बनित (Calcium Carbonate) २२·२५ भाग, मग (Mag. Carbonate) १·०५ भाग, मग गन्धित (Mag. Sulphate) २·०० भाग, सोडियम नत्रित (Sodium Nitrate) ४·२५ भाग, सोडियम गंधित (Sodium

Sulphate) ६·२५ भाग, हरिद (Chloride) ३·५२ भाग।

लवण (Sault)

हमारे देह में ५॥ छटांक (११ औंस) लवण है। इस का मुख्य कार्य (व्यापार = Function) देहके कोष्ठकों (Cells) को पोषण देना और सारे शरीर में जल का वितरण है। इसकी विद्यमानता से प्रत्येक तन्तु (धातु = Tissue) को लाभ पहुंचता है, किन्तु लवण रक्त को विषाक्त कर देता है। यह ध्रुव सत्य है और प्राचीन आर्यों को भी यह बात ज्ञात थी। अर्श (Piles) और श्वास (Asthma) में लवणका प्रयोग भयानक माना गया है तथा वर्जित है। हमारे देह के पोषणार्थ अपेक्षित लवण, फलों और शाकोंमें विशुद्ध एवं संशोधित रूपमें पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है। रक्त में उसका सात्मीकरण (Assinilation) सुगमता से हो जाता है, किन्तु कृत्रिम लवण उदर की भित्तियों में एकत्रित हो कर अजीर्ण (Dyspepsia) उत्पादक है। अधिक लवण खाने वाले जलोदर (Dropsy), संधिपीड़ाओं (Joint affections) दीर्घ नीलिका यन्त्र (मोतियाबिन्द = Cataract) तथा अन्य नेत्र रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं। लवण देह के नवीकरण (समुन्नति) में जिस पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर है, बाधक है। प्यास की अधिकता भी लवण के अधिक प्रयोग से ही होती है।

शर्करा (Sugar)

शर्करा शरीर को उष्णता तो निःसन्देह प्रदान करती है

और इसी लिये वह हमारे आहार का आवश्यक अंग अवश्य होनी चाहिए। सर्वोत्तम शर्करा की प्राप्ति फलों से होती है। संशोधित शर्करा (Refind Sugar) तो रक्त को गाढ़ा कर देती है, श्रान्ति और आलस्य लाती है सामर्थ्य को घटाती तथा निद्रा का नाश करती है। प्राचीन रोम (Rome) और ग्रीस (Greece) देशों के वासी तो उसका अस्तित्व भी आज से २०० वर्ष पूर्व तक न मानते थे। यह पाचन को गड़बड़ा देती है अम्लता की उत्पादक है, विक्षोभ (उफान) की जननी है तथा अध्यशन (अतिभोजन) को उकसाती है। शर्करा और श्वेतसार (Starch) मिल कर उफनते हैं और आमाशय को मद्यनिर्माण-शाला (Distillery) में परिणत कर देते हैं। अतः श्वेतसार-मय रोटी के साथ शहद (मधु) कभी न खाना चाहिये। प्राचीन आयुर्वेद में इनको अयोगवाही कहा है। सब प्रकार की मिठाइयां और मुरब्बे अप्राकृतिक आहार होने से त्याज्य हैं। संशोधित शर्करा अप्राकृतिक और नैसर्गिक गुण-रहित द्रव्य है। शुष्क फलों जैसे खजूर, दाख (द्राक्षा अथवा मुनक्का Raisin) अंजीर, खूबानी (Apricots) आदि में द्राक्षोज (अंगूरी शक्कर=Glucose =Grape Sugar) होती है जो कृत्रिम संशोधित शर्करा तथा मिठाइयों की अपेक्षा बहुस्वास्थ्यप्रद है। मेरी सम्मति में यदि हलवाइयों (कन्दोइयों = मिठाई बेचने वालों) की दुकानें बन्द होकर फलों की दुकानें खुल जांय तो साधारण जनता के स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुंचे। मसाले आदि रसनोत्तेजक या स्वादवर्धक

द्रव्यों (Condiments) में भी कोई स्वास्थ्यके लिए लाभदायक गुण नहीं है। कुछ काल तक वे आमाशयिक रस (Gastrice juice) को अधिक उत्तेजित करके निकालते हैं और उससे अध्यशन को उत्तेजना मिलती है। उससे आमाशय के अंगों पर अधिक जोर पड़ कर वे शीघ्र थक जाते हैं और स्वकार्य संचालन में असमर्थ हो जाते हैं। अन्त में उत्तेजित आहार करने वालों का स्वास्थ्य बिल्कुल चौपट हो जाता है।

तम्बाकू का दुर्व्यसन

तम्बाकू पीने व खाने से मस्तिष्क को अति क्षति पहुंचती है। इससे रसना का सामर्थ्य (Sense of taste) मंद और निर्बल पड़ जाता है। तम्बाकू पीने से अस्वास्थ्यकर विषैला कार्बोनिक एसिड गैस फुफ्फुसों में जाता है। तम्बाकू से दृष्टि को हानि पहुंचती है तथा हृदय का स्पंदन (धड़कन) बढ़ता है। इस विषय में सब वैज्ञानिकों, वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों तथा समस्त अन्य बुद्धिमानों की सहमति है कि तम्बाकू अब तक के परिज्ञात सब विषों में मारकतम विष है। योरुप में सिगरेटों को 'कफन की कील' (Coffin-Nails) कहा जाता है। तम्बाकू के परित्याग से निम्नलिखित छः बड़े लाभ प्राप्त होते हैं :—१-समुन्नत स्वास्थ्य २-उत्तम चिन्तनसामर्थ्य ३- इसके बन्धन से स्वाधीनता ४-कार्य और क्रीड़ा की उत्क्रांत परिवर्धित शक्ति ५-उच्च मानसिक भावनाएं ६-उसमें व्यय की बचत से धन लाभ।

इस दुर्व्यसन के परित्याग का उपाय यह है :—

प्रथम अपने मन में भले प्रकार विचार करो कि स्वच्छ वायु का एक २ घूंट अमृत है। यदि स्वच्छ पवित्र वायु में विषैला धुआं मिला दिया जाय तो यह विकृत वायु फेफड़ों के लिए मारक विष बनकर जीवन के ह्रास का कारण होगा। सच पूछो तो सिगरेट या हुक्के का प्रत्येक कश (कर्षण) संखिया विष के तुल्य है और इस दुष्ट विष को कभी अपने पास न आने देना ही बुद्धि-मत्ता है। दृढ़ संकल्प-बल उत्पन्न करो और तम्बाकू के इस नाशक दुर्व्यसन को तुरन्त छोड़ दो। इस प्रकार दृढ़ धारणा से सहस्रों और लखोखा मनुष्यों ने उसके परित्याग में सफलता पाई है और कोई कारण नहीं कि आप भी प्रत्येक अवस्था में सफल न हों।

मादक द्रव्य

सभी मादक और उत्तेजक द्रव्य प्रत्येक धर्म तथा संप्रदाय में गर्हित, परित्याज्य और निषिद्ध माने गये हैं। वे सभी विष हैं और उनका सेवन महापाप (महापातक) है। प्रत्येक प्रकार का मद्य शराब), ताड़ी, भंग, गांजा, चरस, चन्डू आदि सभी मादक द्रव्यों की श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

—दूध—

दूध हमारे देहों को बलप्रद तथा विश्रांत नाड़ी संस्थान के पुनर्निर्माण वा नवीकरणार्थ सर्वोत्तम आहार है। यह प्यास बुझाने के लिए पेय पदार्थ नहीं है, प्रत्युत पूर्ण आहार है और जीवन के लिए सच्चा अमृत है। दूध को अकेला ही पीना चाहिये वा फलों के आहार के पश्चात् पीना चाहिये।

इसका प्रभाव देह के प्रत्येक अंग पर पड़ता है और यह विशिष्ट बल्य द्रव्य (Tonic) है। इसे कभी आग पर औटाना नहीं चाहिए, प्रत्युत तुरन्त दुहे दूध को घूंट घूंट करके धारोष्ण पीना चाहिये वा किसी खोखले तिनके (तृण) वा दूध पीने की बोतल (Feeding bottle) वा कांच वा रबर की नली से धीरे धीरे पीना चाहिये। इससे उसमें पाचनार्थ अत्यावश्यक मुखका लाला-रस (Saliva) प्रचुर मात्रा में भले प्रकार मिल जाता है। दूध में शर्करा (खांड या चीनी आदि) न मिलाई जाय, क्योंकि दूधमें पूर्व से ही दुग्ध शर्करा (Lactoro) की प्रचुर मात्रा विद्यमान है। यदि तुरन्तका दुहा दूध विलम्ब से मिले तो उसको एक दूसरे पात्र में उण्डेल कर ऊपर नीचे हिलाडुला कर (अलट पलट) कर उसमें झाग उत्पन्न कर लेने चाहिये और इसी दशा में उसको पीना चाहिए। आंग्लभूमि (England) के वासियों में यह उक्ति प्रचलित है कि दूध को औटाना वा उबालना उसको बिगाड़ना है (Milk boiled is milk spoiled)। इस बात की पूरी सावधानी रखिये कि गौ या बकरी का ऊधं (बांक = Udder) दुहने से पूर्व उष्ण जल से भले प्रकार धोकर स्वच्छ कर लिया जाय। दूध दुहने वाले मनुष्य को अपने हाथ भी धो लेने चाहिए। जिन मनुष्यों को दूध अनुकूल न पड़ता हो, उनके लिये उसका तक्र (मट्ठा = Butter Milk), दही और दूध का तोड़ (Whey) दूधके स्थानापन्न पदार्थ सर्वोत्तम हैं। दूध से बने मक्खन, मलाई और पनीर भी प्रसन्नता पूर्वक प्रयोग में लाने

रोटी के साथ या रंधे शाकों के साथ फल खाने से उदर में विक्षोभ (उफाय=Fermentation) उत्पन्न होता है। पाचन संस्थान में फलों के अम्ल, क्षारीय द्रव्यों (Alkalies) के साथ मिलकर प्राकृतिक लवणों (Natural salts) को जन्म देते हैं, जो सीधे रक्त में मिल जाते हैं। और वहां पोटाश, सोडा तथा खटिक (Potash, Soda & lime) के कर्बनित बन जाते हैं। फल मूत्राम्ल और सोडा के समास (Urate of soda) को घुला कर मूत्र के मार्ग से बाहर निकाल देते हैं। फलों में बहुमूल्य खनिज द्रव्य जैसे लोह, स्फुर तथा खटिक (Iron, phosphorus & lime) संसारकी किसी भी रसायन शालामें अब तक बने हुए इन द्रव्यों से अधिकतर संशोधित रूप में विद्यमान हैं। फलों का रस विशुद्धतम स्नुत जल (Distilled water) प्रदान करता है और प्यास बुझाने का सर्वोत्तम साधन है। फलों के साथ जल न पीना चाहियें। फल सूर्य की पाकशाला में (सूर्यकिरणों) से बने हुए प्रकृतिमाता के स्वसुनिर्मित सुभोग्य द्रव्य हैं। अपने वास्तविक रूप में सब प्रकार के कृत्रिम आहारों से बढ़े चढ़े हैं।

टिप्पणी—क्षुद्र-संधिवात (अंगुष्ठ=संधिवात=Gout) के रोगियों को शुष्कफल न खाने चाहियें।

—मधु-(शहद)—

प्राचीन लोग मधु को परमपिता परमात्मा का वरदान मानते थे। और यह द्रव्य मनुष्य को परिज्ञात-प्राचीनतम तथा पूर्णतम द्रव्य है। संसार के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में मधुकी महिमा

गाई गई है। बाइबिल, कुरान आदि अन्य धर्मग्रन्थों में भी मधु के उत्कर्षका वर्णन है। प्राचीन आयुर्वेद, वैद्यक तथा यूनानी तिब्ब के ग्रन्थ मधु के गुणों से भरपूर हैं। यदि सर्वत्र सुन्दर उद्यान लगाये जांय तो उनके फलों के आहार से भूमण्डल के रोगों तथा कष्टों की मात्रा न्यूनतम हो जाय और उन्हीं उद्यानों में पाली हुई मधुमक्खियों से उत्पन्न मधु मनुष्यों को कल्याणप्रद आनन्द प्रदान करे। मधु वह आहार है, जो शर्करा की अपेक्षा अधिकतर ओजपूर्ण है। बल प्रदान में उसका स्थान बहुत ऊंचा है। जिन मनुष्यों के दैनिक आहार में मधु का समावेश है, उनको निश्चय रखना चाहिये कि वे अपने मस्तिष्क और हाथों की कार्यकारिणी शक्ति में वृद्धि कर रहे हैं। मधु के आहार से पाचन संस्थान पर भार नहीं पड़ता, क्योंकि मधु तत्काल रक्त में मिल जाता है। मधु में मांस पोषक तत्व (Proteins), लोह तथा अन्य कुछ आवश्यक पोषक द्रव्य पाये जाते हैं। पुराने समय से चिकित्सा में मधु का प्रयोग मृदु विरेचक (Laxative) तथा कफ-निःसारक (Expectorant) के रूप में होता है। मधु अपने गुणों के विचार से आहार को मुख्य श्रेणी में परिगणत किये जाने योग्य है, वह प्रत्येक ऋतु में प्रतिदिन (१ चम्मच=४ माशा) खाया जा सकता है। उसमें भोज्यौज ख (Vitamin B) भी पाया जाता है। भारतवर्ष में अब से १००० वर्ष पूर्व मधु तथा दुग्ध का इतना प्राचुर्य था कि भारत में उनकी नदियां बहने की चर्चा चल पड़ी थी। मुसल्मानों के पवित्र धर्मग्रन्थ कुरान में लिखा है कि यदि विशुद्ध मधु को वर्षा के जल में मिलाकर प्रातः पिया जाय तो

उससे सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। मधु कार्तिक (अक्टूबर या नवम्बर) मास में मधुपटलों (छत्तों) से निकाला जाता है। कार्तिकमें निकाले हुए (कतकिया) मधु की श्रेष्ठता सर्वप्रसिद्ध है। वह शुक्लपक्ष की अंतकी चांदनी रातों में अधिक मात्रामें मिलता है। जब मधु का रंग काला या हरा हो जाय तो वह विषैला हो जाता है और उसका प्रयोग न करना चाहिये। मधु और घृत को सममात्रा में कभी न खाना चाहिये, उससे मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है।

विशुद्ध मधु की पहचान यह है (१) मधु की २-१ बूंदें किसी स्वच्छ समतल भूमि पर डालिये और उनको मुंह की फूंक से उड़ाइये। यदि मधु शुद्ध है तो उसकी वे बूंदें आपकी फूंक से उड़ कर दूसरे स्थान पर उसी रूप में ठहर जांयगी। अन्यथा कृत्रिम मधु की बूंदे पृथ्वी पर जहां की तहां चिपकी रह जांयगी।

(२) मधु को आग पर जलाने से यदि तड़तड़ शब्द हो तो वह विशुद्ध मधु नहीं है। (३) कहते हैं कि कुत्ता विशुद्ध मधु को नहीं खाता। शुद्ध मधुका रंग गहरा लाल होता है. किंतु मधुमक्खी द्वारा विविध रंगों के फूलों के रस ग्रहण के अनुसार हलका लाल भी पाया जाता है। मधुके स्वाद में विलक्षण मिठास होता है, जो शर्करा (खांड) में नहीं होता।

सन्तान को जन्मते ही प्रथम मधु और घृत (सम-मात्रा में नहीं) चटाया जाता है। मनुस्मृति के इस वचन में (मंत्रवत्प्राशनं चास्य मधुस्वर्णसर्पिषाम्) तुरन्त जन्मे शिशु के जातकर्म-संस्कार

में वेद मन्त्रोच्चारण पूर्वक मधु, सुवर्णपत्र और घी मिला कर चटाने का विधान है। उससे उसका कोष्ठ (उदर) रेचन द्वारा स्वच्छ हो जाता है। तदनन्तर माता का स्तन्य पिलाना चाहिये। आजकल जो तुरत जन्मे बालक को गुड़ादि की जन्मघुटी पिलाने की प्रथा प्रचलित है, वह उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकर तथा त्याज्य है। मधु परम बलप्रद आहार है।

लीमू (कागज़ी नींबू–Lemons)

साधारणतः लीमू का रस अम्ल (Acid) समझा जाता है, स्वास्थ्याभिलाषी जनों की इससे बढ़ कर कोई भूल (भ्रम) नहीं हो सकती। उन्होंने केवल भ्रमवश अपने विचार को इस सच्चे औषधाहारमय विलक्षण गुणयुक्त फल के प्रतिकूल पक्षपातपूर्ण बना रखा है। लीमू के रस में निस्सन्देह, आमाशयिक रस में (Gastric juice) मिल कर क्षारीयता में परिणत हो जाने की शक्ति है। वह निर्विवाद सर्वोत्तम रक्तशोधक है और देह में एड़ी से चोटी तक स्फूर्ति लाता है। इस हृद्य (हृदय के लिए हितकर= Cardial) द्रव्य से नेत्रों की दृष्टि भी बढ़ जाती है। यह नीलिका मात्र या लिंगनाश (मोतियाबिंद = Cataract) नामक नेत्र रोग का भी नाश करता है। इसके लिए प्रतिदिन छने हुए लीमू रसकी २–३ बूंदे, २–३ बार उक्त रोग वाले नेत्र में डालनी चाहिये।

यह शिशुओं के उदर के कीड़ों को भी मारता है। सर्व प्रकार के आमाशयिक रोग, खांसी, क्लोमकंडिका प्रदाह (Bronchitis), श्वास (Asthma), संधिवात (Rheumatism),

चाहियें। दूध में कीटाणुओं की विद्यमानता केवल मनका हौआ है और उस पर कभी विश्वास न करना चाहिये। दुग्ध (दूध) चिपचिपाहट उत्पन्न करने वाला वा कफोत्पादक (Mucous forming food) आहार है और क्षतों (जख्मों = Ulcerations) तथा कई प्रकार के ज्वरों में निषिद्ध है। दूध क्लामेकण्डिकाओं (फुफ्फुसों की सूक्ष्म नालियों = Bronchial tubes) में जमे कफ को ढीला करके बाहर निकालता है। दूध को सदैव निराहार (खाली पेट) पीना अच्छा है और दुग्धपान के पश्चात् ४ घण्टे तक कुछ न खाया जाय। केला और दूध अनुपमेय आहार हैं और श्वेतसारमय आहारों (Starchy foods) से अधिकतर बलप्रद हैं। दूध के गुणों का संक्षेप से वर्णन किया जाय तो वह प्रायः ऐसा सुन्दर आहार है जिसमें मनुष्य के दैहिक और मानसिक आहार के लिये सारे तत्त्व (द्रव्य) विद्यमान हैं। दूध वस्तुतः रक्षक आहार (Protective food) है। और उसको अन्य आहारों के साथ मिलाजुला कर न पीना चाहिये। जब उसका सेवन किया जाय, तो उसे अकेला अन्याहार-विवर्जित (Exclusive) रूप में ही पिया जाय। दुग्ध बालकों के लिए जीवन, युवाओं का स्वास्थ्य तथा वृद्धों का बल है। वर्षा ऋतु में दूध न पीना चाहिए। यदि दूध पीते मितली (Nausea) और उबकाई (Sickness) आये तो यह इस बात का प्रमाण है कि शरीर में अम्लता (Acidity) की न्यूनता है। कागजी लीमू (Lemon) का रस इस दोष को दूर करता है।

टिप्पणी १—पिसे हुए मीठे बादाम, जैतून-तेल (Olive oil) और सोयाबीन दूध के स्थानापन्न हैं तथा उसके स्थान में इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मनुष्य के सारे रोगों को अच्छा करने के लिए दुग्धकल्प एक अनुभूत प्रयोग है और उसके प्रयोगकी रीति निम्नलिखित है-

प्रथम दिन पूर्ण उपवास रखो कुछ न खाओ। दूसरे दिन बिना मीठा मिलाया हुआ तुरन्त का दुहा एक-एक गिलास दूध प्रातः ८ बजे से सायं ८ बजे तक घण्टे घण्टे भर पीछे पीते रहो। तीसरे दिन भी यही क्रम चलता रहे और २० दिन तक बरबर बना रहे। यदि कभी वमन वा अतिसार का आक्रमण हो तो थोड़ा सा लीमूका रस उसी मात्रा के उष्ण जल में मिला कर दो तीन बार पी लेना चाहिए वा उस दिन उपवास करना चाहिए। दूध पीने वालों को बद्धकोष्ठ कभी नहीं होता। यदि दुर्भाग्यवश वह कभी किसी को हो भी जाय तो सूखे आलू बुखारे के कई दाने प्रातः सायं चूस लेने चाहिए।

टिप्पणी २—यदि सायं का दूध पतले वस्त्र से ढका हुआ हुआ खुले वायु में धरा रहे तो उसका स्वाद अम्ल (खट्टा) प्रतीत होता है, किंतु उसमें भोज्यौज (Vitamins) विद्यमान रहते हैं। उसका पीना निषिद्ध नहीं, प्रत्युत लाभप्रद है। किन्तु उसे आग पर कभी न उबालना चाहिए। प्रथम श्रेणी का दूध तो तुरन्त का दुहा हुआ धारोष्ण ही है। दूध में मधु (शहद) मिला कर पीना प्रशस्त है।

विविध प्रकार के दुग्धों का विश्लेषण-कोष्ठक

दुग्ध प्रकार	मांसपोषक तत्व (Protien)	क्षारीय तत्व (Mineral matter)	अल्पाग्निवर्धकतत्व (कर्बोज-शर्करा-श्वेतसार) (Carbohydrats)	खटिक (Calcium)	ओज्यौज क (Vitamin A)	ओज्यौज ख Vitamin B]	स्फुर Phosphorus
गौ	३·३०	०·७०	४·८०	०·१२०	१८०	...	०·०६३
महिषी (भैंस)	४·७५	०·८०	४·४५	०·२०३	१६२	...	०·१२५
अजा (बकरी)	३·१००	०·८०	५·३०	०·१२८	१८२	...	०·१०३
मानुषी (स्त्री)	१·१८	०·३०	७·२०	०·०३४	२०८	...	०·०१५
मलाई उतारे हुए दूध का चूर्ण (Skimmed milk powder)	३८·०४	६·८३	५०·६४	१·३७०	...	१६५	०·६६५

—फल—

मेरी फल की परिभाषा निम्नलिखित है :—

फल वृक्ष का वह भाग है, जिसमें बीज रहते हैं। फलों और शाकों को प्रयोग से पूर्व जल से (जहां कहीं पम्प हो तो उसके नीचे उन पर जल की धार डाल कर और जहां पम्प न हो वहां एक बड़े पात्र में) भले प्रकार खंगाल कर धो लेना चाहिये। अति-पके और गले-सड़े फल बिल्कुल न खाने चाहियें। जहां ताजे फल मिल सकते हों वहां सूखे फल न खाने चाहियें; विशेषत: ग्रीष्म ऋतुमें सूखे फल न खाइये। प्रत्येक ऋतुका फल प्रत्येक देश के विचार से प्रत्येक मनुष्य की रुचि के अनुसार परमात्मा ने उत्पन्न किया है। यही बात फलों के चुनाव में हमारी पथप्रदर्शक है। फलों को जिह्वालौल्य की तृप्ति वा विलास का साधन न समझो। यह ठीक नहीं है कि उन्हें कभी-कभी भोजन के अन्त में खा लिया जाय। वस्तुत: फल भोजन और भेषज (औषध) दोनों हैं। फल सब श्रेणी के जन्तुओं (मनुष्य, पशु, पक्षी) के लिए उत्पन्न किये गये हैं और केवल एक ही बीज से करोड़ों फल पैदा होते हैं।

फलों में अन्तर्निहित शर्करा पाचन में सहायक होकर पाचन-संस्थान का बहुत सा श्रम बचाती है। इस श्रम का उपयोग अन्यत्र हो सकता है, वास्तविक प्राकृतिक शर्करा फलों में ही होती है। मशीनों से तैयार और विशुद्ध (Refined) की हुई शर्करा कृत्रिम है।

क्षुद्र संधिवात (अंगुष्ठ=संधिवात=Gout), पक्षाघात (Paralysis), राजयक्ष्मा (Tuberculoses), कर्कटार्बुद (Cancer) कंप (Chorea=St. Vitan's Dance) आदि २ भी इसके प्रयोग से शीघ्र चले जाते हैं।

लीमू प्यास बुझाने का सुन्दर उपाय है और मलशोधक भी है। यह एक अच्छा जारण-प्रतिरोधक (Antiseptic) द्रव्य है और इसमें खटिक (Calcium), मग (Magnesium) तथा स्फुर (Phosphorus) की भी गुणदायक मात्रायें हैं। इसको सबही फलों का राजा कहा गया है। यदि १। छं० या २॥ औंस (एक गिलास) लीमू के रस में विशुद्ध मधु मिलाकर पिया जाय तो वह बहुत कल्याणकर है। २$\frac{1}{2}$ तोले (१ औंस लीमू के रस में २ माशा (३२ ग्रेन) जंबीराम्ल (Citric acid) होता है। लीमू भोज्यौज ग. (Vitamin C) से परिपूर्ण होता है। उसमें भोज्यौज क तथा ख (Vitamins A & B) भी होते हैं।

लीमू-चिकित्सा (जंबीर कल्प)

इस चिकित्सा में केवल लीमू के रस का ही आहार रहता है। कोई श्वेतसारमय (Starchy) आहार ग्रहण नहीं किया जाता। केवल लीमू चूसा जाता है वा लीमू-रस मधु की तत्तुल्य मात्रा में दिन भर में दो बार पिया जाता है।

(१) प्रथम दिन पूर्णोपवास रहे। जल पी सकते हैं।

(२) द्वितीय दिन लीमू का रस तप्त वा शीतल जल की तत्तुल्य मात्रा में मिला कर दिन भर में ४ बार पिया जाय।

तृतीय बार इसी प्रकार पांच लीमुओं का चौथे दिन ६ का, ५वें दिन ७ का, ६ठे दिन ८ का, ७वें दिन ९ का, ८वें दिन १० का, ९वें दिन ११ का और १०वें दिन १२ लीमू का रस पिया जाय।

(३) १–१ करके इसी प्रकार यहां तक घटाते जाइये कि आप ३ लीमू पर पहुंच जांय। आप इस पूरे कल्प को २१ दिन दिन में पूर्ण करें। इसमें अपेक्षित सब लीमुओं की संख्या २०० तक पहुच जाती है। यह कल्प प्रत्येक प्रकार के जीर्ण तथा विषम रोगों में हितैषी वैद्य का कर्तव्य पालन करता है और अनेक बार का अनुभूत प्रयोग है।

(४) त्वचा के रोगों के लिये लीमू का प्रयोग अनुपम चिकित्सा है।

(५) यदि शुद्ध मधु मिल सके तो उसके लीमू से संयुक्त प्रयोग से प्रतिदिन लाभ उठाना चाहिए। उसकी मात्रा चाय का २ चमचा है। (१ चमचा = १ ग्राम = ४ माशा)

सूचना—लीमू को ताजा बन्द रखने और उसमें सेलिसि-काम्ल (Salicic Acid) स्थिर रखनेके लिए उनको एक खुले मुंह के पात्र (अमृतबान = मृतबान) में डाल कर उसको ऊपर तक तप्त जल से भर दो, जिससे उसमें सारे नींबू डूब जांय। फिर पात्र का मुंह बन्द करके रख दो। लीमू पर वेस्लीन मल कर और वायु से बचाकर रखने से भी उसकी उपयोगिता चिरकाल तक बनी रहती है। लीमू को यदि किसी पवनाप्रवेश (Air proof) पेटी में रखा जाय तो वे पर्याप्त समय तक ताजा रहते हैं।

संतरा (नारंगी=Orange)

संतरा आहार तथा पान दोनों का काम देता है। संतरे में सारे शरीर को शुद्ध कर देने का गुण है। यह प्रत्येक पुरुष के लिए रोचक है। इसको शिशु और वृद्ध समान रूप से खा सकते हैं। जिन लोगों को व्यवसाय वश बैठे रहना पड़ता है और जिन्हें बद्धकोष्ठ रहता है उनके लिये संतरा सुन्दर सुपच आहार है। संतरे का रस आमाशयिक ग्रन्थियों को उत्तेजित कर क्षुधा बढ़ाता है। वह सन्धिवात (Rheumatism) तथा दन्तपूयमेह (Pyorrhoea) से बचाता है. प्रतिश्याय (जुकाम = Cold) को भी रोकता है, सर्व प्रकार के ज्वरों, श्वास-सहित क्लोमकण्डिका के सर्व रोगों (Bronchial affections) और पैत्तिक उपद्रवों (Biliary troubles) की चिकित्सा है। यदि आपकी सन्धियों में कठोरता आ गई है व नाड़ियों में चुभक (Tivitching) की पीड़ा हो रही है, मस्तिष्क स्वच्छ नहीं है आलस्य सताता है और नींद उचटती है तो २-४ सप्ताह तक संतरों का प्रातराश कीजिए और मध्यान्हार में भी किसी हरे शाक के प्रचुर सलाद के साथ खाइए। इससे आप स्वास्थ्यसमुन्नति स्वयमेव प्रत्यक्ष देख सकेंगे।

संतरे के एक चमचा रस में १० छटांक दूध का गुण है। उसमें भोज्यौज ग (Vitamin C), खटिक (Lime) और पोटाश भी हैं।

सेब (Apple)

सेब भी भोजन और भेषज दोनों है । उसमें शरीर-शोधक गुण है और वह शरीर के विषैले द्रव्यों को दूर करता है। यह फल अंगुष्ठ-सन्धिवात (Gout) और मन्द यकृत (Sluggish liver) को दूर करता है । इसको छिलके समेत खाना चाहिए क्योंकि इसके छिलकेमें एक विशेष पोषकतत्व भोज्यौज ग (Vitamin C) प्रचुरता से पाया जाता है। भोजन से पूर्व सेब का रस पिया जाय तो उससे देह में बढ़ी हुई अम्लता (Aciditis) नष्ट हो जाती है। इसका रस भयानक अंत्रज्वर (Typhoid fever) और राजयक्ष्मा (Tuberculosis) के कीटाणुओं का विनाशक (Bactricidal) है। यह फुफ्फुसों (Lungs), यकृत (Liver) और गुर्दे (Kidneys) का उत्तेजक है। इसमें ताम्र (Copper), पोटाश, लोह और मैलिक एसिड (Malic acid) है। मैलिक एसिड नाम ही सेब के अम्लतत्त्व का है। यह शब्द लैटिन भाषा के (Malum) (सेब) से बना है। सेब को सृष्टि के आदि पुरुष आदम की पत्नी हौवा (Hava) का फल कहते हैं। यह कहावत कि "एक सेब प्रतिदिन खाओ और वैद्य को दूर भगाओ" (Eat apple a day and throw the doctor away) अनुभूत है। इसमें भोज्यौज क ख ग (Vitamins A B & C) होते हैं। यह सब फलों का सम्राट् है।

द्राक्षा (अंगूर=Grapes)

इसमें सुल्ताना (स्मर्ना प्रांत की किशमिश=Smyrna) तथा साधारण किशमिश (Currant) भी सम्मिलित हैं। अंगूर ज्वरों और शिशु के दांत निकलते समयके कष्टों के लिये उपयोगी हैं। वे निर्बल पाचन में बलप्रद हैं तथा रक्त के ह्रास, अतिश्रम तथा श्रांति से समुत्पन्न विलोहितता (Anema) को नवीन रक्त उत्पन्न करके अच्छा करते हैं, बद्धकोष्ठ को खोलते हैं, क्लांति व क्रोध के पश्चात् विक्षुब्ध रक्त को शांत करते हैं। देह के अति बढ़े हुए भार पर उनका प्रभाव प्रतिकूल पड़ता है। मंद यकृत् और रक्त के किसी स्थानिक जमाव के लिए अंगूर बहुत उपयोगी पाये गये हैं। उनमें दंतवेष्ट-शैथिल्य-नाशक शक्ति (Anti-scorbutic) का बाहुल्य है, क्योंकि उक्त रोग देह को भोज्यौज ग न (Vitamin C) मिलने से उत्पन्न होता है। अंगूर में इसकी प्रचुरता है और भोज्यौज क ख ग (A B C) की भी प्रचुरमात्रा है अर्थात् पोटाश, ताम्र और लोह भी होता है। अंगूर में (Tartaric acid) तार्तारिकाम्ल भी पर्याप्त होता है।

(दाख=Raisins)

दाख (मुनक्का) भूमण्डल के प्राचीनतम शुष्क फलों में से है और कहते हैं जिस प्रदेश में मनुष्य की आदि सृष्टि हुई थी, वहां ही दाख उत्पन्न होती है। इसका प्रयोग प्राचीनकालसे भोजन तथा भेषज में होता रहा है। जब मनुष्य प्राकृतिक आहार के नियम का उल्लंघन करता है तो तज्जनित रोगों की चिकित्सा

विधि में मुनक्का बहुमूल्य है। उसमें पोटाश, खटिक, तथा स्फुर होता है। उसमें अम्लद्रव्य (Acid) प्रायः किसी भी रूप में नहीं पाया जाता। आध सेर दाख के आहार में १६०० देहतापोत्पादक मात्राओं (Callory) की शक्ति है। इसके आहार से आप, रोगों के बीहड़ वन में भटकने के स्थान में, स्वास्थ्य की सुरम्य नगरी में विहार करेंगे। कुछ बादाम, मृदु नवनीत (पनीर = Cheese) या दुग्ध के साथ चिकित्साविधि या पथ्य के रूप में एकमात्र दाख का आहार आधे या एक मास तक किया जाय तो उससे पाचन को विश्राम, फुफ्फुसों तथा हृदय के लिए स्वल्पतर कार्य, एवं गुर्दे को उत्तेजन और अंत्रों के लिए मृदु विरेचन मिलता है। एकमात्र दाख खाने से स्वदेह पोषण के निर्वाह की साक्षी हमको स्वपूर्वजों के उदाहरणों से मिल रही है। विख्यात वैद्यवर "कविकुलसुलतान" (यह उनकी अपने लिए स्वप्रयुक्त उपाधि है) लोलिंबराज अपने "वैद्यावतन्स" ग्रन्थ में दाख के गुण इन पद्यों में वर्णन करते हैं।

द्राक्षा साक्षात्सुधा तावन्मधुरा रसपाकयोः।
सृष्टमूत्रसकृद्गुर्वी स्निग्धा शुक्रकरी हिमा॥
तुवराक्षिहिता मदात्ममानिलपित्तक्षतजक्षयक्षयान्।
श्वसनं कसनं ज्वरं तृषं, स्वरभेदं मुखतिक्ततां हरेत्॥

अर्थ—द्राक्षा शब्दसे मुनक्का, काली, गोस्तनी दाखें तथा किशमिशों को जानना चाहिये। द्राक्षा साक्षात् अमृत के समान है। द्राक्षा का रस मधुर है और पाक भी मधुर होता है, यह मलमूत्र का

विसर्जन (त्याग) करती है, गुरु (भारी), स्निग्ध. वीर्य बढ़ाने वाली और शीतल है। इसका रस तुवर (कसैला हैड़ आदि के समान) है, यह नेत्रों को हितकर है। नशे के उतार, वात, पित्त, रक्त क्षय तथा क्षयरोग श्वास, खांसी, ज्वर, प्यास, स्वरभेद तथा मुख के कडुएपन को दूर करती है।

मुनक्का में भोज्यौज ख तथा ग (Vitamin B & C) पाये जाते हैं। यकृत, फुफ्फुस तथा पाचन के रोग केवल द्राक्षा-कल्प दाख-चिकित्सा) की निम्नविधि से नष्ट हो जाते हैं।

—द्राक्षाकल्प—

१ पाव से १ सेर तक बड़ी दाख लेकर उष्ण या शीतल जल से भले प्रकार धो डालिये। फिर इन्हें कांच, चीनी या मिट्टी के पात्र में इस प्रकार जल डाल कर रख दीजिए कि जल उनके ऊपर रहे। वे पात्र के ऊपर पड़े हुए बारीक मलमल के वस्त्र खण्ड से ढकी, रात भर जल में भीगी धरी रहें और जलको सोख लेवें। प्रातः मध्यान्ह तथा सायं इन दाखों का आहार कीजिये और उसमें ही का बचा हुआ जल पीजिये। यह आहार क्रम १५ दिन या अधिक अवधि तक चलाया जा सकता है। चाहें तो इनमें (आध सेर में १ पाव) बादाम तथा १० छटांक दूध मिला सकते हैं। यह कल्प श्वास और जीर्णकास के लिए विशेष हितकर है।

टिप्पणी १—मुनक्का, किशमिश, अंगूर तार्तरिक अम्ल (Tartaric acid) वर्ग के फल हैं। लीमू तथा संतरे जम्बीर–

अम्ल (Citric acid) वर्ग के फल हैं। सेव तथा बेर मौलीकाम्ल (Malic acid) वर्ग के फल हैं।

टिप्पणी २—फलों को कभी उबाल कर न खाना चाहिए। जम्बीराम्ल वाला कोई भी फल रोटी शूकधान्य या श्वेतसारीय आहार के साथ कभी न खाना चाहिये। ये पदार्थ योगवाही नहीं हैं।

अनार (Pomegranates)

अनार शीत प्रदेशों का अति स्वादु तथा बलप्रद है। उस के भीतर उसके लाल दाने मोतियों के समान पिरोये हुये हैं। अनार रक्त में अपने जैसा रंग उत्पन्न करता है, यकृत में बढ़ी हुई ऊष्माको कम करता है, हृदयको बल देता है, फुफ्फुसोंका सहायक है, प्यास का बैरी है। इसमें भोज्यौज ख तथा ग (Vitamins B & C) पाये जाते हैं। शिशुओं के यकृत्प्रदाह में (Enlargement of liver) हितकारी है।

खट्टा अनार—यकृत की बढ़ी हुई उष्णता, आमाशय-प्रदाह पैत्तिक वमन तथा अतिसार को दूर करता है। शुष्ककण्डु (सूखी खुजली), उन्माद तथा तन्द्रा में भी लाभदायक है।

खटमिट्ठा अनार—पैत्तिक वमन, अतिसार, पांडु (कमलवाय=जाण्डिस) तथा कण्डु में लाभप्रद है। आमाशय और यकृत को बलप्रद है। हिक्का (हिचकी) को दूर करता है।

—अमरूद—

प्रसन्नताप्रद (मुफर्रिह), मृदुविरेचक, हृद्य (हृदय को बलप्रद), आमाशयको हितकर तथा क्षुधावर्धक है। यह निराहार

खाने से बद्धकोष्ठ करता है, किन्तु आहार के पीछे खाया जाय तो मृदुविरेचक है । डा० श्यामनारायण माथुर पी० एच० डी० (लन्दन) प्रोफेसर गवर्नमेंट कालिज लखनऊ ने लिखा है कि भोज्यौज के विचार से अमरूद सब से अच्छा फल है। भोज्यौज ग. (Vitamin C) में तो वह मशहूर है। सौभाग्य से महंगे फलों की अपेक्षा सस्ते फलों में भोज्यौज की मात्रा अधिक होती है जैसे अंगूर और सेब में वह कम किन्तु अमरूद और चूष्य (चूसे जाने वाले) आम में अधिक होती है। अमरूद का वृक्ष छोटा होने के कारण प्रत्येक पुरुष के घर के छोटे आंगन में भी लगाया जा सकता है और अन्य फलों की अपेक्षा वह फलता भी अधिक है अतः वह निर्धनों के लिये भी सुलभ है। अमरूद सेब की जाति का फल है, उस पर सेब की कलम चढ़ाई जाती है। अतः उसको निर्धनों का सेब ही समझना चाहिये। इलाहाबाद का स्वादु अमरूद विख्यात है। उस को कागजी लीमूके रसमें रचा कर खाया जाय तो उसका स्वाद और गुण बढ़िया हो जाता है।

आमलक (आमला)

भोज्यौजों के वर्णन में आगे चल कर इस ग्रंथमें भोज्यौज ग (Vitamin C) के विषय में यह उल्लेख है कि मनुष्य के आहार में उसके अभाव वा न्यूनता से त्वग्रोग (Skin diseases) हो जाते हैं। उनमें दन्त-मांसशैथिल्य (Scurvy) मुख्य है। भोज्यौज ग गर्भित पदार्थों के सेवन से यह रोग नष्ट हो जाता है, किन्तु भोज्यौज ग संतरा आदि बहुमूल्य फलों में उपलब्ध है और

संतरा भारत में मध्यप्रदेशके अतिरिक्त योरुप में भूमध्य सागरतीर के देशों के अतिरिक्त अन्यत्र निर्धनों की पहुंच का फल नहीं है। संतरा तो धनी पुरुष ही खा सकते हैं। इस लिए परमात्मा की ओर से निर्धनों एवं धनियों को समान रूप से भोज्यौज ग की प्राप्ति के लिए आमला दिया गया है। आमले में इस विटामिन की सबसे अधिक मात्रा होती है और वह हमारे भारत में बहुत सुलभ तथा सस्ता है। कच्चे आमले की गुठली निकाल कर फेंक दो और उसको कुचल कर रस निकाल लो। फिर उसमें मधु मिला कर बच्चों को प्रतिदिन पिलाना चाहिये। इस से उनको कोई त्वग्रोग न होगा और उनके दांत भी सुगमता-पूर्वक निकल कर दृढ़ रहेंगे। प्रौढ़ पुरुष भी यदि कच्चे आमले को सिल-बट्टे से पीस कर, लीमू रस और पोदीने के मिश्रण से स्वादु बना कर चटनी के रूप में खायें तो यह उनके लिये बहुत हित-साधक होगा।

बिल्व (बेल)

बिल्व की प्रशंसा से प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थ भरपूर हैं। यह पाचक और अग्निवर्धक है। खेद है कि पाश्चात्य आहारा-न्वेषकों ने भारतीय फलों का अभी तक अन्वेषण और विश्लेषण नहीं किया है। अनुवादक का अनुभव है कि यदि पके हुए बेल फल का ताजा गूदा खाया जाय वा सुखा कर टिकिया के रूप में रख कर जल में भिगो कर पानक के रूप में पिया जाय तो वह बहुत ही गुणदायक, सुन्दर मृदुविरेचक है। तथा अनुभूत

चिकित्सा सागर ग्रन्थ के अनुसार बेल का "पक्का फल नीरोगता बढ़ाने वाला, शरीर को पुष्ट करने वाला स्वादिष्ट और सब प्रकार के मनुष्यों के खाने के काम आता है।" तथा अच्छा सारक (Purgative) है। उसकी एक विशेषता यह है कि उससे अधः शौच (दस्त) बन्धा हुआ आता है और इस प्रकार बिल्व रस भेषज और भोजन दोनों के रूप में उपयुक्त है। हिन्दुओं में वैशाख मास में बेल का आहार धार्मिक दृष्टि से पुण्यप्रद माना जाता है। ग्रीष्म ऋतु में बेल के गूदे को पानी में घोलकर उसमें मधु वा मिसरी घोल कर पिया जाय तो वह बड़ा स्वादु और गुणदायक पेय है। प्रवाहिका तथा आमातिसार की तो यह अचूक औषधि है। बेल हृदय, यकृत तथा आमाशय को बलप्रद है।

खरपूज़ा (खरबूजा)

उदर को नरम करता है, सुद्दे को खोलता है, मूत्र लाता है, वृक्क और मूत्राशय को स्वच्छ करता है पुंस्त्व-वर्धक है। इस का निराहार खाना हानिकर है।

गूलर

शुष्क कास और छाती की पीड़ा, प्लीहा (तिल्ली), वृक्क तथा मुंह से रुधिर आने में लाभदायक है। किन्तु पेट में कुछ आधमान करता है।

तरबूज

प्यास बुझाता है, मूत्र खोल कर लाता है, पित्त एवं रुधिर

की उत्तेजनाको घटाता है, पित्त-ज्वरमें लाभदायक है। इसका जल (लीमूरस में मिलाकर) पांडु रोग में लाभप्रद है। चावलों के भात के साथ इसका योग नहीं है, जिस दिन तरबूज खाया जाय भात न खाया जाय।

शहतूत

मीठा शहतूत मल के सुद्दे को खोलता है, रक्त बढ़ाता है, देह में स्थूलता लाता है, पुंस्त्व-वर्धक है। कंठावरोध में इसका रस बहुत लाभप्रद है।

खट्टा शहतूत पित्तनाशक, प्यास शमनकारी, रक्तविक्षोभ को शांत करता है। मस्तिष्क की ओर मलिन वायुओं (अबख़रात) को नहीं जाने देता।

फालसा

पैत्तिक वमन, अतिसार, हिक्का (हिचकी) और अतितृषा में लाभदायक है। मूत्रदाह, लिंगपूतिमेह (सूज़ाक=Gonorhea) और ज्वरताप का नाशक है। आमाशय, हृदय और यकृत को बलप्रद है।

चकोतरा

पित्तनाशक, क्षुधावर्धक तथा आमाशय को बलप्रद है। कफ प्रकृति वालों को हानिकर है और खांसी लाता है। इस का छिलका मुंह पर मला जाय तो उसका सौन्दर्य बढ़ाता है।

सीताफल (शरीफा)

प्रकृति में मृदुता लाता है, उन्माद को लाभादायक है, वीर्योत्पादक तथा पुंस्त्ववर्धक है हृद्य, पौष्टिक तथा पित्तनाशक है।

ज़ामुन

हृद्य, मस्तिष्क और यकृत् को बलप्रद तथा पाचक और क्षुधावर्धक है। जामुन की गुठली का चूर्ण ३ माशा प्रातः सायं मधु में मिला कर खाया जाय तो वीर्यवर्धक, प्रमेहनाशक तथा कंठ-शोधक है।

पिस्ता

हृदय, मस्तिष्क आमाशय, पुंस्त्व और स्मृति को लाभ-दायक है। यकृत् की कठोरता को दूर करता है, देहस्थूलकर है। पाचक, बलवर्धक मांसादि की न्यूनता का पूर्ण करने वाला है।

चिलगोज़ा

वृक्क, आमाशय तथा जननेन्द्रियों को लाभदायक है, पुंस्त्व-वर्धक तथा नाड़ी संस्थान को बलप्रद है।

लौकी (श्वेत पुष्प का कदू)

शुद्ध रक्त उत्पन्न करता है। उदर को मृदु करता है, मूत्रल है। राजयक्ष्मा के रोगियों के लिए सर्वोत्तम आहार है। ज्वर के ताप की शांति के लिए इसका रस उपयोगी है।

करेला

करेले का शाक वा रस मूत्रल है। मस्तिष्क को स्वच्छ करता है, मृदुविरेचक है, उदर के कीड़ों को मारता है, अर्धांग, प्रमेह, आम सन्धिवात तथा जलोदर में हितकारी है। अश्मरी (पत्थरी) को तोड़ बहाता है ! शीतल प्रकृति के पुरुषों के आमाशय को बलप्रद है, उत्तम शाक है।

वास्तूक (बथुवा)

बथुवे का शाक कोष्ठ शोधक है, इस लिए इसको पारसी भाषा में जारोब मेदा (आमाशय की मार्जनी=झाड़ू) कहते हैं। वीर्य उत्पादक है, प्लीहा (तिल्ली) को बलप्रद है। अर्श तथा रक्त विकार में लाभप्रद है। निर्धनों के लिए सर्वोत्तम शाक है।

—मेथी—

मेथी के पत्रों का शाक दीपन, रोचक और पाचन में हल्का होता है स्त्रियों के कष्ट से होने वाले मासिक स्राव तथा प्लीहा और यकृत की वृद्धि को दूर करता है।

पलांडु तथा लशुन

पलांडु (प्याज़) के गुण बढ़ा कर बतलाने की कदाचित् आवश्यकता नहीं है। यह उत्तम रक्त शोधक है। इसका रस स्वाद में कटु (Bitter) और क्रिया में तीक्ष्ण (Acrid) होता है। प्राचीन मिस्र-वासी कोई शपथ लेते हुए एक प्याज़ या लशुन को दायें हाथ में लिये रहते थे, इससे उनके मुख्य आहार के रूप में आदर-प्रदान द्योतित होता है। प्याज़ में गंधक (Sulphur), स्फुरित (Phosphate) तथा खटिक का जम्बीराम्लीय लवण (Citric acid of lime) अंग्श्तेतिम (Albumen), शर्करा (Sugar) और अन्य कई लवणों की प्रचुर मात्रा होती है। उसमें भोज्यौज ग (Vitamin C) का भी बाहुल्य है। वह कठोर पेशियों के श्रम और श्रांति में मृदुता लाता है तथा उत्साह और बलका संचार करता है। रोमवासी (Romans) ग्रीक (Greeks)

तथा फ्रांसीसी (Frenchs) अपने अभिजनों को पोषण के लिए प्लांडु का आहार नियमपूर्वक कराते हैं। इसमें कदाचित् अन्य शाकों से कहीं अधिक ओज है। यह एक प्रकार की घरेलू औषध है। यदि किसी को दारुण प्रतिश्याय हो जाय तो एक समग्र प्लांडु कच्चा खा लेवे, प्रातः उठने पर उसको उक्त रोग शांत प्रतीत होगा। प्लांडु शोथ एवं घुघुरायित स्वर (Hoarseness) को दूर करता है। शयन समय प्लांडु रसकी उग्र गंध को सूंघने से कुछ ही क्षणों में निद्रा आजाती है।

बारी के ज्वर (Ague) प्रातिश्यायिक (Catarhal) ज्वर और खांसी की यह अमोघ औषधि है। नाड़ियों के रोगों को यह घरेलू चिकित्सा है। उन्मत्त (Insane) और अपस्मार (Epi-liptic) रोगियों की वह प्रधान औषधि है। यदि किसी का बोलना बन्द हो जाय और वह गूंगा प्रतीत होने लगे तो प्लांडु का रस पीने से वह अपनी पूर्व-प्रकृत दशा में आ जाता है। डा० वैलेंटाइन ने स्तम्भित-हनु (Lock-jaw) में ग्रस्त मनुष्य की चिकित्सा के लिए सुषुम्ना-कांड (Spinal cord) पर लशुन रस मलने का विधान किया है। प्लांडु वातिक-शीर्ष-वेदना Neuralgic headache) तथा अर्धशीर्ष वेदना (आधा सीसी=Migrain=) Megrin) में पर्याप्त लाभदायक है। इसके लिए पीड़ित स्थान पर प्लांडु की पुलटिस बांधनी चाहिये।

प्लांडु आमाशयिक प्रतिश्याय (Stomach-catarh) को दूर करता है। आधमान (Flatulence) को हटाता, क्षुधा को उत्तेजित करता है एवं अजीर्ण को नष्ट करता है। दंत पीड़ा, दंत

वेष्टों (मसूड़ों) और मुख की सूजन तथा क्षत (Ulceration) की यह विशेष औषधि है। अंगुष्ठ संधिवात (Gout) की यह प्राचीनकाल से सर्वप्रिय औषधि चली आई है। इसके नियमित प्रयोग से क्षय (Consumption), रक्तकास (Blood-letting) तथा अन्य वक्षः स्थल के रोगों में बहुत लाभ पहुंचता है। यह छाती में से जमे हुए कफ को निकालता है। वृक्करोग (Kidneys) तथा जलोदर (Dropsy) एकमात्र प्लांडु के प्रयोग से अच्छे हो गये हैं। यह स्वेद लाकर शरीर के विकृत द्रव्यों और विषों को निकालता है।

सर्प, बिच्छू और पागल कुत्ते के काटे पर प्लांडु का गूदा पीस कर लगाने से बहुत लाभ पहुंचता है। प्लांडु को शुद्ध मधु में मिलाकर श्वेत बालों पर लगायें तो वे काले पड़ जाते हैं। इसका रस मुंह पर लगाने से उसकी कांति बढ़ती है और मुहाएं दूर हो जाते हैं। यदि कोई स्वस्थ प्रौढ़ पुरुष प्रतिदिन प्लांडु का प्रयोग करे तो उसके लिए बड़ा बलप्रद है।

संस्कृत में एक उक्ति है—"जगाम जेतुं जगतीं पलांडुः"। प्लांडु ने जगत को विजय करने के लिए यात्रा की है अर्थात् उसका सर्वत्र आदर है। वैद्यवर 'कवि पादशाह' (यह उनकी स्वगृहीत उपाधि है) लोलिंबराय ने "वैद्यावतंस" में प्लांडु की प्रशंसा में निम्नपद्य लिखे हैं।

पवमानहरोम्लपित्तकर्ता कटुतीक्ष्णो गुरुरीषदुष्णवीर्यः।
कफवातगुदांकुरेषु शस्तस्तनुते श्लेष्मबलानलान् पलांडुः।

अर्थ प्लांडु वातनाशक अम्लपित्तोत्पादक, तिक्त, तीव्र, भारी, कुछ उष्णवीर्य, कफ एवं वात से उत्पन्न अर्शरोग के मस्सों (गुदांकुर) पर हितकारी, कफ, बल तथा अग्नि को बढ़ाता है।

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक सिन्क्लेयरके निम्नपद्य प्रसिद्ध हैं:-

Onions are like an April day,
Good for the sad, good for the gay,
An excellant food and drug are they,
He who uses them certifies either way.
Sinclair.

इनका भावार्थ मेरे रचित निम्नलिखित उपजाति-छद संस्कृत पद्य में अनूदित है :—

वसंतवन्मोदमयः पलांडुः, स्वास्थ्यस्य रुग्णस्य हिते समौ वै
अनुत्तमं भोजनभेषजं च, प्रशंसितः सर्वचिकित्सकैश्च ।

टिप्पणी १--सर्पों के विद्रावण (खदेड़ने) के लिए प्लांडु के टुकड़े घरों में बखेरे जाते हैं।

२—लशुन त्वचाग्रंथियों को उत्तेजित करता है और त्वचा को पिटिकाओं तथा मस्सों से बचाता है। वह देह को बलप्रद है, किन्तु उसकी उग्र गंध जनसमाज में उद्वेजक होती है, जिसके निवारण के लिए उसके भक्षण के पीछे अजमोद या पार्सली (Parsaley) खाया जाय तो उसकी उग्र गंध नहीं आती, दब जाती है। प्लांडु और लशुन एक ही जाति के पादप (पौधे) हैं।

टमाटर (टमैटो=Tomato)

वृक्ष पर स्वाभाविक पके लाल टमैटो या आग पर भाफ

से पकाये टमाटरों का जितना भार होता है, उनमें उतने ही भार के भोज्यौज क तथा ख (Vitamins A & B), काहू (Lettuce) तथा लता की मटर (String beans) के समान और भोज्यौज ग (Vitamin C) सतरों और लीमू के समान होते हैं। टमाटरों का रस दंतमांस-शैथिल्य (Scurvy) तथा बालास्थिशैथिल्य (Rickets) के लिए सर्वोत्तम औषध माना गया है। जिन शिशुओं और निर्बलजनों का पोषण यथेष्ट न होता हो उनकी वह मुख्य औषध है। वह देह को मलों से स्वच्छ करता है और पोषणतत्व न्यूनताजन्य रोगों को जिनमें त्वचा पर धब्बे पड़ जाते हैं, दूर करता है। इस संसार में आहार के किसी भी एक अंग के अभाव से उत्पन्न रोगों से वह बचाता है। ज्वर से पीड़ित रोगी उसके प्रयोग से शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं। इसका रस पिपासाशामक पेय है और भोजन के साथ प्राकृतिक स्वाद्-वर्धक तथा क्षुधोत्तेजक (Appetizer) है। उसमें तीनों आवश्यक अम्ल (Acids) सेवाम्ल (Malic acid) जंबीराम्ल (Citric acid) तथा स्फुराम्ल (Phosphoric Acid) विद्यमान हैं। मधु मेह (Diabities) की आहार द्वारा चिकित्सा में टमाटर सब फलों एवं वनस्पतियों में सर्वश्रेष्ठ है। स्थूलता (Obesity) और विलोहितता (Anema) में इसका बहुत विधान है। मद्य, उत्तेजक द्रव्य (चाय आदि) तथा औषध के अतिदुर्व्यसन को दूर करता है। अति समृद्ध वा पुष्पहारों या अति न्यूनव्यायाम के परिणामों के विष टमाटर के रस से वश में आ जाते हैं। यह प्रभावशाली रक्तशोधक, वृक्कों का दोषापसारक और रोगोत्पा-

दक विषों के बहिष्कार में सहायक हैं। यह बद्धकोष्ठ (Constipation), दुर्गन्धित श्वास (Foul breath) आमवात (Rheumatism), अंगुष्ठसंधिवात (Gout) तथा अन्य कई रोगों को भगाते हैं। इनमें खनिज द्रव्यों का प्राचुर्य है और मांसपोषक तत्व (Proteins), स्फुरित (Phosphates), पोटाश, खटिक (Lime), मग्न (Magnesium) सोडियम, गंधक (Sulpher), हरिण (Chlorine) तथा लोह भी हैं। इनमें सब आहारों से बढ़ कर भोज्यौज (Vitamins) हैं और सब वनस्पतियों से अधिक प्राकृतिक स्वास्थ्यवर्धक अम्ल हैं। इस लिये वे शैशव से वृद्धावस्था तक सब आयु में सर्व सामान्य का आहार होने चाहियें। टमाटरों को सदा छिलके सहित ही खाइये। इनके आहार से रक्त में रक्तकण अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं।

सोयाबीन

सोयाबीन मटर की जाति का अन्न है। चीन, जापान में इसकी खेती बहुत होने लगी है। इस अन्न में मांसपोषक तत्व और स्नेहद्रव्य (Fat) का प्राचुर्य है। इसमें प्रायः सब भोज्यौज (Vitamins) पाये जाते हैं। यह निर्धन पुरुषों का मांस तथा दुग्ध का काम देता है। अंडों और काड मछली के यकृत-तैल (Codliver oil) के गुण भी इसमें हैं। आधुनिक वैज्ञानिक गवेषणाओं में इसकी बहुत प्रशंसा की गई है और इसे किसी भी ऋतु में यथेच्छ खा सकते हैं। अमेरिका और योरुप में अब यह बहुत सर्वप्रिय बन रहा है। महात्मा गांधी ने इसके

प्रयोग के परीक्षण किये हैं। यह दूध पीते बच्चों के लिए भी उपयोगी है और मधुमेह के रोगियों के लिए आदर्श आहार है। इसमें अन्य आहारों में अप्राप्य एक विशेष गुण यह है कि वह जल एवं स्नेहद्रव्य दोनों के आधिक्य को देह में समदशा में रखता है। उसकी तुलना 'पीनट' (Peanut) से हो सकती है।

आम्र (आम)

यह भारत का बहुत स्वादु फल है। देखने में सुन्दर और खाने में रोचक होता है। भारतवासी इसको अमृतफल कहते हैं। इसमें भोज्यौज ख तथा ग (Vitamins B & C) पाये जाते हैं। यह पुंस्त्ववर्धक है। आम खाकर बिना मीठे का कच्चा या धारोष्ण दूध पीना चाहिये। इससे स्थूलता की वृद्धि न होकर बल प्राप्त होता है।

नाशपाती (Pears)

यह सुरंग मधुर फल है, जो काश्मीरादि शीत देशोंमें उत्तम प्रकार का होता है। यह हृदय को तुष्टि तथा यकृत् को सुख देता है। उत्तम आहार है। इसमें भोज्यौज ख (Vitamin B) होता है, पोटाश और खटिक (Lime) का प्राचुर्य है। अंगुष्ठ-संधिवात (Gout) तथा विलोहितता रोग में यह उपयोगी है। निर्बलों के लिए बलप्रद है। इसको छिलके समेत ही खाइये।

आड़ू (नाख=Peaches) = शफ्तालू

हरे नाख में भोज्यौज क, ख, ग (Vitamins A B C) होते हैं और सूखे में केवल भोज्यौज ख, और ग ही होते हैं।

यह उदर पूर्ति के लिए उत्तम आहार है।

रसभरी (Strawberry=स्टाबरी)

यह साधारणतः लोह और भोज्यौज ग से भरपूर है।

आलू बालू (Cherries)

इनमें लोह का प्राचुर्य है। यह खाने में अति स्वादु और पोषक है। इसमें भोज्यौज ख और ग (Vitamins B, C) हैं।

अंजीर (Figs)

अंजीर में स्वाभाविक शर्करा का बाहुल्य है, इस लिए यह ओज का सुन्दर स्रोत है। इसमें भोज्यौज ख तथा ग (B, C) पोटाश, सोडियम, खटिक, स्फुर और मग्न पाये जाते हैं। यह कोष्ठशोधक है और वक्षः (छाती) तथा यकृत् के रोगों में विहित है। स्वेद लाता है, देह को स्थूल बनाता है, रक्तवर्धक है, मस्तिष्क को बलप्रद है, वक्षः तथा फुफ्फुसों के लिए हितकारी है।

खजूर (Dates)

यह स्वाभाविक शर्करा से भरपूर है जो तत्काल रक्त में मिल जाती है। यह प्रथम श्रेणी का कोष्ठशोधक है। इसमें क्षारीय द्रव्यों की न्यूनता होते हुए भी यह मृदुविरेचक है। कफ तथा नाड़ी संस्थान के रोगों के लिए अत्युपयोगी है। इसमें भोज्यौज क, ख, ग (Vitamins A, B, C) पाये जाते हैं।

कदलीफल (केला=Banana)

केले में खटिक, मग्न, स्फुर, गंधक, लोह और ताम्र पाये जाते हैं। इसको श्वेतसारीय आहार के स्थान में खाना चाहिये।

दूध और केला उत्तम बलप्रद है। केले को भले प्रकार चबा २ कर खाना चाहिये। इसके आहारसे रक्त प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होता और देह स्थूल हो जाता है। यह सब प्रकार के अन्नों से उत्तम आहार है और मृदुविरेचक भी है। इसके खाने से क्षारीय रक्त Alka- line) उत्पन्न होता है अम्लयुक्त नहीं। इसमें भोज्यौज क, ख ग होते हैं। केला हमारी मांस पेशियों, पट्ठों तथा इनके स्नायुवों में शक्ति देने वाला एक अत्यन्त पौष्टिक भोजन है। स्नायुवों का आधार निशास्तादायक भोजनों पर निर्भर है। मज़दूर लोग अनाज और दालों की अपेक्षा केले के फलों के आहार से अधिक लाभ उठा सकते हैं। टांगों की मांस पेशियों, जोड़ों और इनकी स्नायुवों में अधिकतर दर्द अनुभव किया करते हैं, इसका मूल कारण भोजनों में निशास्ता की न्यूनता है। केला इस क्षति को पूर्ण करने में सर्वोत्कृष्ट है।

गाजर (Carrot)

गाजर में खटिक स्फुर, सोडा, मग्न लोह तथा पोटाश पाये जाते हैं। जिनको विलोहितता (रक्त-न्यूनता) का रोग हो या जीर्ण रोग से उठ रहे हों, उनके लिए गाजर उत्तम वस्तु है। यह पेट के कीड़ों को मारती है, मुख मंडल की कांति को बढ़ाती है। इसका रस पोषण की न्यूनता, कृशता विलोहितता शस्त्रोपचार (Surgery) के कष्टों तथा प्रसव के स्त्रियों के रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। यह देह की अम्लता को क्षारीयता में परिणत कर देती है और देह की त्वचा के लिए स्नेह द्रव्य जुटाती

है। शरीर की स्थूलता को भगाती तथा रक्त को बढ़ाती है। सब शाकों में प्रथम श्रेणी का शाक है और इसकी गणना फलों में है। यह काड मछली तैल (Codliver oil) की अच्छी स्थानापन्न है। इसमें भोज्यौज क, ख, ग पाये जाते हैं। अतीव उपयोगी है।

लतायुक्त मटर (Peas)

लता वाली मटर में पोटाश, ताम्र और मग्न पाया जाता है। हरी मटर में भोज्यौज क, ख, ग होते हैं। यह मांस-पोषक-द्रव्यमय आहार है इस लिए इसको एक-एक करके भले प्रकार चबा कर खाइये।

आलुक (आलू=Potatoe)

आलू उत्तम आहार, मांसपोषक द्रव्य से भरपूर है। इसे श्वेतसारीय द्रव्यों के स्थान में खाया जाय तो यह बहुत लाभप्रद है। इसे छिलकों सहित खाना चाहिये। यह धूसरवर्ण की त्वचा के (Muddy complexion) मनुष्यों को बहुत उप-योगी है। वात-व्याधियों को दूर करता है। यह शकरकन्द से मिलता जुलता है। इसमें सोडा पोटाश, लोह तथा श्वेतसार विद्यमान हैं और भोज्यौज क, ख, ग भी होते हैं। यदि १५ दिन तक केवल छिलकों सहित उबले आलू का आहार किया जाय और कुछ न खाया जाय तो वह जीर्ण आमवात (Rheumatism) को अच्छा करता है।

पालक पत्रशाक (Spinach)

पालक के पत्तों में लोह एवं खटिक का बाहुल्य है। यह

वृक्क रोगों तथा विलोहितता को हटाने में बहुत हितकारी है। यह देह शोधक भी है। इसमें भोज्योज क, ख, ग विद्यमान हैं। ओस से लदे हुए इसके पत्ते विशेष लाभप्रद हैं।

अजमोद (अजवायन=Cellary)

अजमोद पत्रों में खटिक, लोह, सोडा, पोटाश, ताम्र पाये जाते हैं। यह वातव्याधि नाशक है। उदर में अपान भर कर आधमान को उत्पन्न नहीं होने देता। इसमें भोज्यौज क, ख ग होते हैं। इसके ओस से लदे हरित पत्र प्रातः कच्चे खाये जांय तो वे आमवात का उन्मूलन करते हैं

कर्मकल्ला (बन्द गोभी=Cabbage)

इसमें गंधक खटिक, स्फुर और लोह पाया जाता है। यह त्वचा को बलप्रद है, बद्धकोष्ठ को भगाती है, मधुमेह को शांत करती है। इसका सलाद बनाकर खाना चाहिये इसमें भोज्यौज क, ख, ग, घ, ङ (Vitamins A, B, C, D, E) विद्यमान हैं।

काहू (सलाद=Lettuce)

काहू के पत्तों में लोह, खटिक तथा पोटाश होते हैं। यह बहुमूल्य गुणपूर्ण शाक है और सरकारी उद्यानों तथा बंगलों में सामान्यतः बोया जाता है। इसमें भोज्यौज क, ख, ग, ङ, पाये जाते हैं। इसके हरे पत्तों का आहार बहुत बलप्रद है। इसे बड़ी सुगमता से उगा सकते हैं और यह वर्ष भर हरा बना रहता है इसकी खेती सर्वत्र अनुमोदनीय है। यह अत्युत्तम आहार है, जिसे शिशुओं को भी खिलाना चाहिए। यह प्रतिदिन का

आहार है। इसके बाहर की ओर के पत्ते सबसे अच्छे होते हैं।

रक्त (Blood)

रक्त जीवन का स्रोत है। उसमें सजीव (जांतव= Organic) तथा निर्जीव (खनिज = Inorganic) दोनों द्रव्य विद्यमान हैं। जिस व्यक्ति का जितना देह भार होता है, उसका ५ वां भाग रक्त उसके देह में रहता है। यह साधारणतः देह में १५ सेर (३० पौंड) के लगभग होता है। यह २० भागों में से १ भाग के अनुपात से खनिज द्रव्यों से, २० में से १४ भाग पानी से और २० में ५ भाग सजीव (जांतव) द्रव्यों से निर्मित है। सारे देह में रक्त के १ बार के परिभ्रमण में लगभग ६॥ पल (१६० सैकड=२$\frac{2}{3}$ मिनट) लगते हैं अर्थात् देहकी सारी रक्त राशि २४ घंटोंमें ५४० बार फुफ्फुसोंमें होकर घूम जाती है।

सजीव द्रव्य—जल, शर्करा, स्नेह तथा अंगेज द्रव्य (Albumenic substances)।

निर्जीव (Inorganic) १२ लवण, सोल्यौज़, (बढ़ई तरखान = तक्षण = Carpentors) जो जीवनार्थ अत्यावश्यक हैं। १–लवमिश्रित खटिक (कैल्केरिया फ्लोराइड = Calcaria fluoride), २–स्फुर मिश्रित खटिक (कैल्केरिया फास्फेट=Calcaria phosphate), ३–गंधक मिश्रित खटिक (Calcaria sulphate) = Gypsum=Plaster of Paris [पेरिस में 'जिप्पसम' ही प्लास्टर के काम आता है, इस लिए उसका नाम पेरिस प्लास्टर पड़ गया है] ४–स्फुर मिश्रित लोह (Ferum phosphate = iron), ५–हरिण मिश्रित केलियम (पोटाशियम=Chloride=

Kali muriate = or chloride), ६—स्फुर मिश्रित पोटाशियम (Kali phosphate), ७-गंधक मिश्रित पोटाशियम (काली सल्फेट पोटाश=Kali sulphate) ८-स्फुर मिश्रित मग्न (मैग्नेशिया फास्फेट=मैग्नेशियम), ९-हरिण मिश्रित सोडियम (नैट्रम म्यूरियेट=[नैट्रम=सोडियम । साधारण लवण), १०-स्फुर मिश्रित सोडियम (नैट्रम फास्फेट= फास्फेट आव सोडा), ११-गन्धक मिश्रित सोडियम (नैट्रम सल्फेट=सोडा), १२-शैल (सिलिश)=Pure flint or quar-try.

रक्त के एक सहस्र ग्राम (१ घन सेंटिमीटर जल भार) निम्नलिखित निर्जीव लवण हैं—

(१) काली म्यूरियेट ३·०७९, (२) काली फास्फेट २·३४३, (३) फेरम फास्फेट ·९९८, (४) नैट्रम फास्फेट ·६३३, (५) नैट्रम म्यूरियेट ·३४४, (६) काली सल्फेट ·१३२, (७) कैलकेरिया फास्फेट ·०९४, (८) मैग्नेशिया फास्फेट ·०६० ।

निर्जीव लवणों के गुण

१—स्फुर (फास्फोरस) अस्थियों तथा हृदय की वृद्धि में सहायक है, नाड़ियों और मस्तिष्क को पुष्ट करता है, मानसिक शक्तियों को बलप्रद है फुप्फुस, यकृत् एवं वृक्कों को भी उपयोगी है । यह अंड-पीतिमा (Yolk of egg), समग्र गेहूं, मटर, लोबिया, जौ, मकई, (ज्वार), फूल गोभी, मसूर, अजमोद, पालक, काहू, खीरा, मुम्हड़ा), मरचोवा (Asparegres=

बारीक विदेशी मूली), राई पत्रों दूध, ग्राम्य पनीर, तक्र गिरी, बादाम, शुष्क अंजीर मूंगफली, पिस्ता, अखरोटमेंसे प्राप्तव्य है।

२—खटिक (कैल्शियम) अम्लता का प्रतिहारक (Acid contracter), दांतों को लाभकारी, सजीवता तथा सहिष्णुता का सहायक, अस्थियों को बढ़ाना और पुष्ट करता है। इसकी न्यूनता से दांत क्षीण हो जाते हैं। यह समग्र गेहूं, दूध का तोड़, पनीर, संतरा अंजीर, खूबानी, आलूबुखारा, पालक, काहू, मूली शलजम, पार्स्निप सांडु, कर्मकल्ला, अजमोद में से प्राप्य है।

३—हरिण (क्लोरीन) विकृत द्रव्यों को देह से निकालता और रक्त शोधक है, यह इन द्रव्यों में प्राप्य है—दूध का तोड़, पनीर, काहू, पालक, कर्मकल्ला, शलजम, चुकन्दर, गाजर, अजमोद, लोबिया, मरचोबा, खीरा।

४—गंधक (सल्फर) देह शोध करके देहसन्नद्धता को स्थिर रखती है (Tons)। इन पदार्थों में प्राप्य है—मूली कर्मकल्ला नोलखोल (Knolkhol), सांडु, मरचोबा, रसभरी (Rosebury), चेस्टनट, गाजर, राई, फूल गोभी।

५—पोटाश (पोटाशियम) तन्तुओं को बलदान करके उनमें स्थिति स्थापकता (elasticity) लाता है, यकृदुत्तेजक है, क्षारीयता (Alkalinity) उत्पादक है और इन पदार्थों में प्राप्य है—गूज़बेरी किशमिश (Gooseberry), आड़ू, आलूबुखारे, अंजीर, बादाम विलायती कासनी (Endives) आलू के छिलके, टमाटर, काहू, मुनक्का, किशमिश, कर्मकल्ला, लोबिया, जलहालो (Watercress), नारियल और इसका दूध।

६—सोडा (सोडियम) उफान को रोकता है, अम्लता का प्रतिरोधक पाचक तथा रक्त शोधक है। इन द्रव्यों में प्राप्य है—संतरा, अंजीर अंगूर, अजा-दुग्ध नारियल पालक मूली, गाजर, काहू, कर्मकल्ला, गोभी कच्चे आलू, समग्र गेहूं, समग्र जौ।

७—लोह ओज तथा सजीवता का समुन्नायक, प्राणप्रद, पवनांश (ओषजन=आक्सीजन=Oxygen) को ग्रहण करता और देह की प्रत्येक धातु का पोषक है। निम्न पदार्थों से प्राप्य है—अंगूर, मुनक्का, जामुन, मकोय, स्टाबरी, फालसा (Blueberry), अनन्नास, शुष्क खजूर, बादाम, शुष्क अंजीर, ज़ैतून के फल, अखरोट, शुष्क मटर, गाजर, आलू बुखारा, काहू, पालक, मूली शलजम, सांडु, अजमोद, खीरा कर्मकल्ला, राई, टमैटो, मरचोबा, मसूर अंडे, समग्र गेहूं।

८—आयोडीन (Iodine) बहुत स्वल्प मात्रा में प्राप्य है, देहग्रन्थियों एवं कोष्ठकों के कार्यों में सहायक है और गल्हड़ (Goitre) को रोकता है। अनन्नास, नाशपाती, टमाटर, कर्मकल्ला, गाजर, काहू, लताकी मटर, लोबिया, लशुन, आलूके छिलके अंड श्वेतिमा में यह प्राप्तव्य है। गुड़ में भी है।

९—लव (क्लोरीन) अस्थियों को दृढ़ करता है और कण्डराओं (Tendons) को बलप्रद है। सौन्दर्यवर्धक तथा रोग प्रतिरोधक है। कर्मकल्ला, फूल गोभी, पालक, मूली चुकंदर जलहालो टमैटो, अजादुग्ध, गोदुग्ध, पनीर तथा नारियलके दूध में यह प्राप्तव्य है।

१०—शैल (सिलिकन) बालों की वृद्धि तथा कांति के लिए आवश्यक एवं दांतों की दृढ़ता, श्रवण, उच्चारण तथा दृष्टि को सुदशा में रखता है। तन्तुओं को लचीला बनाता, निर्बल शिशुओं को पोषक और पैतृक रोगों का नाशक है। पालक, मरचोबा, काहू टमैटो, कर्मकल्ला, फूलगोभी, खीरा, सेंहजना (Horse reddish) मूली, प्लांडु समग्र गेहूं, शूकधान्य (सीरिपल्स), बिना पालिश के चावल, स्टाबरी, गूज़बरी किशमिश, सेब, बेर, गाजर, आलूबालू, अंजीर में यह प्राप्य है।

११—मग्न (मैग्नेशियम) प्रतिरोध-शक्तिवर्धक, अंगप्रत्यङ्ग सहयोग का उत्तेजक (Co-ordinator), सहनशक्ति वर्धक, देह स्फूर्तिजनक, धूसर नाड़ियों में लचक लाता है (Relaxes) इन पदार्थों में प्राप्य है:-पालक, काहू, जलहालो, टमैटो, पोदीना, बादाम, अखरोट, शुद्ध मधु।

भोज्यौज (Vitamins)

शूकधान्य, फल तथा शाक

भोज्यौज जोकि साधारणतः अतिरिक्त आहारघटक (Accessary food factors) कहलाते हैं और जिनका उद्घाटन संप्रति ही हुआ है, विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि उन्होंने जीवन के रासायनिकान्वेषणों (Bio chemical researches) के क्षेत्र में एक नवयुग उपस्थित कर दिया है अब यह बात वैज्ञानिक शैली से सिद्ध हो चुकी है कि भोज्यौज हमारे भुक्ताहार के प्राण हैं। वे मांसपोषक द्रव्य (Proteins) शर्करा और स्नेह द्रव्यों के

समान पूर्व प्रचलित विचारानुसार भोजनतत्व नहीं हैं। भोज्यौज सजीव तत्व हैं और केवल सजीव आहारों में पाये जाते हैं। ये सूर्यकिरणों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं और हरे शाकों, फलों, दुग्धादि में अपने मौलिक रूप में ही मिलते हैं। उनके अभाव से देह एवं नाड़ियों की वृद्धि में न्यूनता आ जाती है। भोज्यौज क तथा ग आग पर उबालने या रांधने से बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। आहार में सोडा मिलाने से भी उनकी उपयोगिता जाती रहती है। भोज्यौज तन्तुओं के लवणों (Tissue-salts) या तन्तु औषधों (Tissue-remedies) के पर्यायवाची हैं। उनका सविस्तर विवरण जीवन-रसायनशास्त्र (Bio-chemistry) में वर्णित है।

भोज्यौज क बालास्थिवक्रता (Rickets) पक्षाघात (Paralysis) दंतक्षीणता, फुफ्फुसों तथा मांसपेशियों (Muscles) के रोगों को अच्छा करता है। यह रोगसंक्रमण का प्रतिरोधक है तथा इन पदार्थों में प्राप्य है :— तुरत का दुहा दूध, नवनीत (माखन), अंकुरित गेहूं, अंडपीतिमा, कच्ची कर्मकल्ला, गाजर, हरे शाकों के पत्ते, काहू, पालक, शलजम, टमैटो तथा सोयाबीन। प्रतिदिन के आहारों में अपेक्षित इस भोज्यौज का मध्यमान प्रतिसहस्र शर्मान इकाई (Sherman units) प्रति औंस है।

भोज्यौज ख वात वलासक ज्वर (Beri-beri) को दूर करता वातरोग प्रतिरोधक (Anti-neuratic) तथा केशश्वेतिमा प्रतिरोधक है। यह निम्न पदार्थों में प्राप्य है :—

अंकुरित गेहूं, चावलों का ऊपरी परत, तुरत का दुहा दूध,

अखरोट, फलों का रस, टमैटो, सूखा बाजरा, छिलके सहित दाल तथा लोबिया, समग्र शूकधान्य, पालक, पोदीना धनिया और अलसी के पत्ते, कर्मकल्ला, गाजर, शल्जम, आलू, अंडपीतिमा, हरित शाक।

भोज्यौज ग दंत मांस शैथिल्य (Scurvy) एवं गलांतर प्रदाह (Dyphtheria) का अपसारक है। यह दंत मांस शैथिल्य-प्रतिरोधक (Antiscarbotic) के नाम से भी प्रसिद्ध है। सेब, केला, बंद गोभी, सुखाई गाजर, लशुन, अंकुरित अन्न, लीमू, हालो, हरे शाक, अंगूर गूजबेरी किशमिश, चकोतरा, आम, पलांडु संतरा, अंकुरित मटर और दाल, उबले आलू, पालक, स्टाबरी, रसभरी, टमैटो में प्राप्य है।

भोज्यौज घ—बालास्थि वक्रता, वंध्यात्व (Sterility) राजयक्ष्माका प्रतिरोधक है और तक्र (छाछ=मट्ठा) अंडपीतिमा, जैतून तैल, नारियल तथा रेडपाम (Red palm) तैल, में प्राप्य है।

भोज्यौज ङ—से नाड़ियों की वृद्धि होती है, इसके अभाव से पुंस्त्वशक्ति नष्ट होती है। यह बादाम, सेब, केला, नवनीत, दूध अंडपीतिमा, गाजर, गेहूं, तैल, छिलके सहित सब शूकधान्य, सोयाबीन तथा बिनौले का तेल, अगर भगर में मिलता है।

भोज्यौज ङ–देहके रक्तस्राव को रोकता है और कर्मकल्ला, फूल गोभी, अंडपीतिमा, पालक तथा सोयाबीन–तैल में प्राप्य है।

टिप्पणी—सर्वोत्तम भोज्यौज सलाद (कच्चे काहू, कर्मकल्ला और टमैटो के बने हुए) दूध वा किन्हीं फलों के रस में मिश्रित अध-उबले अंडों से प्राप्तव्य है।

अथ उबले अंडों का पाक

सवासेर उबलते पानी में अंडों को एक पात्र में डालो और पात्र को आग पर से उतार लो। ६ मिनट बाद उन्हें पानी से निकाल लो। यह खाने योग्य तैयार पाक है। इस रीति से अंडों के भीतर का द्रव्य जम जाता है, नष्ट नहीं होता।

अंकुरित अन्न, मटर तथा दाल आदि इस प्रकार तैयार किये जाते हैं :—

प्रथम उनको २४ घण्टे तक इतने पानी में भिगो रखना चाहिये कि वे उसे सोख लें, फिर उन्हें एक साफ सुथरी चटाई पर वायु में तब तक गीला पड़ा रहने दें जब तक उनमें अंकुर न निकल आयें। फिर उक्त अन्नों को १०-१५ मिनट तक आग पर उबालें और ठंडा होने पर खांय। ये अन्न बिना उबाले भी खाये जा सकते हैं। स्थूल रूप से यह जान लेना चाहिये कि ये अन्न जितने भी अधिक ताज़े होंगे और उनका जितना कम अग्नि से संयोग होगा, उनमें उतने ही अधिक भोज्यौज अधिकतर होने की सम्भावना है।

गेहूं, चने, ज्वार (मकई) रात भर जल में भिगो कर रखे हुए और जल सोखे हुए कच्चे भी खाये जा सकते हैं। चनों को भिगो कर प्रातः खाना बहुत उपयोगी तथा देह को दृढ़ बनाता है।

दूध से पनीर बनाने की विधि

विशुद्ध दूध को किसी स्वच्छ चीनी, काच या मिट्टी के

पात्र में रख कर उसको स्वच्छ, बारीक मलमल के टुकड़े से ढक दो। २४ घण्टे तक इसी दशा में रहने दो, इस बीच दूध बिना कुछ मिलाये स्वयमेव जम जायगा। जमे दूध का जल उस पात्र को टेढ़ा कर पात्र से निकाल लें। शेष जमा हुआ पदार्थ ही पनीर है। इसके आहार से वीर्य बढ़ता है और देह स्थूल होता है। इसका उक्त अवशिष्ट जल भी उपयोगी है। और निर्बल जनों को पिलाना चाहिए।

भाज्यौज-रहित पदार्थ

गेहूं का छना चोकर रहित श्वेत आटा, सूजी, मैदा और इनके बने आहार, मकई का आटा, पालिश वाले चावल, मटर का आटा, अखरोट, मलाई उतरे का पनीर, स्वच्छ की हुई श्वेत शर्करा, चाय कहवा मुरब्बा कृत्रिम घृत (Margarine), यवीय सार (Malt extracts) सर्व प्रकार की मिठाइयां, उबले और मीठे में डाले हुए बन्द डिब्बों के फल, बन्द डिब्बों के मांस, सब प्रकार के शर्बत और मादक पदार्थ देह को कोई पोषण नहीं पहुं-चाते, प्रत्युत उनके पचाने में पाचन-संस्थान को निरर्थक परिश्रम करना पड़ता है। अतः वे सर्वथा त्याज्य हैं।

भोजन (आहार=FOOD)

समस्त आहार क्षारीय (Alkaline) तथा अम्ल (Acid) दो भागों में विभक्त हैं। आहार देह को ओज एवं बल प्रदान करता है और नये रक्त को सृजता है। रक्त जीवन का अमृत है। आहार का नियम होना चाहिये कि उसमें ८० प्रतिशत क्षारीय तथा २० प्रतिशत अम्ल द्रव्य रहे। यदि कोई मनुष्य वस्तुतः रोग-ग्रस्त है तो उस में अम्ल की मात्रा बढ़ गई है और स्वास्थ्य प्राप्ति पर्यन्त उसका आहार क्षारीय रहना चाहिये। पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर ही उसके आहार में अम्ल की मात्रा धीरे २ बढ़ाई जाय।

५० वर्ष से ऊपर की आयु वालों को इसके विपरीत ८० प्रतिशत अम्ल और २० प्रतिशत क्षारीय आहार की आवश्यकता है, किन्तु इसके लिये वे स्वस्थ होने चाहियें। वस्तुतः मनुष्य का आहार उसके देहपोषण में काम आये द्रव्यों (धातुओं) की पूर्ति के लिये है, उसके देह में पोषक द्रव्यों को भर रखने के लिए नहीं है।

क्षारीय आहार तथा पेय (मांसपोषक द्रव्य=Proteins, खनिजलवण (Mineral salts) तथा जल (Water) देह की धातुओं (Tissues) का निर्माण करते हैं।

अम्ल आहार तथा पेय (अल्पाग्निवर्धक=Carbohy-drates, महाग्निवर्धक=तैल=स्नेह द्रव्य=Fats) देह को ओज (Energy) और उष्णता (Heat) प्रदान करते हैं।

आहार, विभाजक (Denominator) का कार्य करता है—सारे देह में अपेक्षित तत्वों को वितरित करता है।

टिप्पणी—मांसपोषक तत्वों (दालों) गिरियों तथा स्नेह-द्रव्यों से भरपूर आहारों का सेवन सदा स्वल्प मात्रा में करना चाहिये।

क्षारीय आहार (Alkaline Foods)

बादाम	सेब	ज़रदालू	खूबानी
मरचोबा	लोबिया	तक्र	चुकन्दर
आलूबालू	चोकगोभीके कल्ले	कर्मकल्ला	गाजर
फूल गोभी	(Brussel)	कुर्स	मलाई
ग्राम्यनवनीत	शाहबलूत के फल	चेस्टनट	मकोय
आलूचा	किशमिश	खीरा	खजूर
विदेशी कासनी	अंजीर	सब प्रकारके नीमू	काहू
(Endives)	आम	खरबूज़ा	दूध
राईपत्र	ज़ैतून	पलाण्डु (प्याज़ Onion)	सन्तरा

नारङ्गी
नाशपाती (Pears)
अनार
मुनक्का
सुलताना (Sultana) नामक स्मरना (Smyrna) की मुनक्का
पार्सनिप (Parsnip= गाजर तथा गोल शलजमके आकार वाले दो प्रकार के विदेशी शाक)
पालक
सोयाबीन
टमेटो
अंगूर
आड़ू (Peach)
अनन्नास Pine apple
आलू बुखारा (Prune)
रेवन्दचीनीपत्र (Rhuburb)
शलजम
तरबूज़
आलू
अरंड खरबूज़ा
पपीता (Papeya)
मस्कटल (Muscatles) नामक कस्तूरी गन्ध मुनक्का
जलहालों (Watercress)

अम्ल आहार (Acid Foods)

सब प्रकार के अन्न और शरबत
कुक्कुट शावक मांस (Chicken)
मकई का आटा (Cornmeal)
मसूर
सब प्रकार के मांस
सूखी मटर (Peanut)
काफी
अखरोट
केले
मैदा की रोटी
सब मिठाइयां और मसाले
बिना छिलके की सब दालें
सेवई (Macaroni)
जई का आटा (Oatmeal)
बेर
मैदा
सूखा लोबिया
पनीर
काकचुद्र फल (Crowberry)
अण्ड श्वेतिमा
सब मछलियां
गिरियां
पेस्ट्री नामक बिस्कुट (Pastry)
हलवा (Pudding)
सर्व प्रकार के उत्तेजक द्रव्य (Stimulants)
नत्रजन (Nitrogen)
कार्बन (Carbon)
स्फुर (Phosphorus)
गन्धक (Sulphur)
मांसपोषक द्रव्य (Proteins)
कर्बोज (अल्पाग्नि-वर्धक द्रव्य= (Carbohydrates)
सब प्रकार के स्नेहद्रव्य (Ftas)
हरिद (Chloride)

पालिश के चावल　　चिउड़ा　　परमल (लाई=मुड़ी=
स्वच्छ श्वेत शर्करा　　चाय　　Rolled oats)

टिप्पणी—१–उपर्युक्त सब अन्नों तथा केले में अम्ल और क्षारीय द्रव्य दोनों सम मात्रा में हैं।

टिप्पणी—२–अण्ड–श्वेतिमा में अम्ल तथा अण्डपीतिमा में क्षारीय द्रव्य होते हैं। यदि शाकों और फलों का आहार उन के मौलिक रूप में करें तो सब रोगों का जनक बद्धकोष्ठ सदा के लिये चला जाय। इस भूमण्डल में सब की आवश्यकताओं के लिये सब कुछ विद्यमान है। परम पिता परमेश्वर ने हमको भूमि दी है, उसमें फल और शाक प्रचुर मात्रा में उत्पन्न किये जा सकते हैं और संसार में सुख शान्ति की स्थापना हो सकती है।

वसा (चर्बी) और तेल (Fats or Oils)

इनके खाने से शरीर में उष्णता और शक्ति आती है। ये श्वेतसारीय (निशास्ता वाले) द्रव्यों से दुगना लाभ देते हैं और नीचे लिखेपदार्थों में पाये जाते हैं :—

बादाम, अखरोट प्रत्येक प्रकार के, मक्खन, पनीर, मलाई, लस्सी, दूध, नारियल का दूध, मूंगफली, खाजा, पिस्ता, अण्डे की पीतिमा (ज़र्दी), अमरूद, आम, ज़ैतून और वनस्पतियों का तेल आदि। अखरोटों के खाने से बहुत बल बढ़ता है और मांस पेशियां दृढ़ होती हैं, थकावट दूर होती है, परन्तु ये भारी होने के कारण देर से पचते हैं।

अतः इनको भोजन के पीछे थोड़े परिमाणमें खाना चाहिये।

निशास्ता वाले द्रव्य (Starches)

इनके खाने से शरीरमें शक्ति और उष्णता आती है। जैसे केला, प्रत्येक प्रकार के अन्न, गाजर, गोभी फूल, अजवाइन प्रत्येक प्रकार की दालें, चाकलेट, बिस्कुट आदि, खजूर, मैदा, शहद, शलगम शुष्क, जमा हुआ दूध, प्रत्येक प्रकार के शर्बत।

मटर ताज़ा वा खुश्क, शकरकंदी, कद्दू, चकन्दर, किशमिश, चावल सागूदाना, खांड सफेद।

प्रोटीन (Protein)

यह शरीर को मज़बूत करती है ताकत को बढ़ाती है और बिगड़ी को सुधारती है। जैसे मांस हर प्रकार, मछली हर प्रकार, अण्डा दाल हर प्रकार, दूध और अखरोट हर प्रकार।

वर्तमान समय के खाद्य पदार्थों में रुचि रखने वाले नेताओं का आदेश है कि प्रोटीन ६० से ७५ ग्राम (Grams) अर्थात् १० प्रतिशत हमारे शरीर के लिए प्रतिदिन आवश्यक है चाहे कोई मनुष्य कैसा ही कठिन शारीरिक काम क्यों न करता हो, इस मतलब के लिए मांस का खाना आवश्यक नहीं क्योंकि मांसमें अम्लता और दुर्गन्धि उत्पन्न करने वाली प्रोटीन होती है। दूध या दालों में जो प्रोटीन होती है वह क्षारीय होती है और कोई दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं करती। बहुत प्रकार के अखरोटों में भी यही प्रोटीन पाई जाती है।

टिप्पणी—शरीर की रक्षा के लिए १० प्रतिशत प्रोटीन आहार, १० प्रतिशत निशास्ता वाली चीजें, १० प्रतिशत चर्बी वाली चीजें, २० प्रतिशत ताजा मेवा और ५० प्रतिशत ताज़ा सब्ज़ियां उपयोगी हैं और इस नियम के अनुसार आचरण करना प्रत्येक मनुष्य के लिए लाभदायक है।

अभिनव-रक्तजनक फल-शाक

गाजर क्षुद्रफल (Cherries) नाशपाती, बेर, अनार,

मुनक्का, स्टाबरी, टमाटर, सेब, अंगूर, लीमू, संतरा, नारंगी, अनन्नास, प्लांडु, लहसुन।

रक्तशोधक फल तथा शाक

सेब, लशुन, अंगूर, लीमू, प्लांडु संतरा अनन्नास, टमाटर।

देहनिर्मापक और सुधारक आहार

दूध, गिरियां, सोयाबीन, मटर, अंडश्वेतिमा, काहू, पालक, कर्मकल्ला और सब रसीले फल।

देह विषपरिहारक फल

६ से १२ तक या अधिक लीमू प्रतिदिन (इच्छा हो तो शुद्ध मधु के साथ), अंगूर, संतरे अनन्नास निर्बलों के लिए एक सप्ताह या उससे अधिक के लिए।

वृक्क प्रदाह तथा धमनियों के काठिन्य से उत्पन्न रक्तचाप का हारक आहार। अंगूर तथा संतरों का रस इसमें हितकर है।

ताप तथा ओजोत्पादक आहार

श्वेतसार, शर्करा, स्नेह द्रव्य, पालक, प्लांडु।

देहभार बढ़ाने की विधि

पहिला काम है तीन दिन का उपवास करो, कुछ न खाओ कम से कम १। सेर जल प्रतिदिन पीते रहो। इन दिनों कोसे जल से प्रतिदिन वस्ति लेना आवश्यक है और देह को विषों एवं अन्य विजातीय द्रव्यों से शुद्ध करने का सुन्दर साधन है। चौथे दिन प्रातःकाल तुरत का दुहा कच्चा बिना मीठे का १ पाव दूध

घूंट २ करके पियो, इसमें कम से कम ३ मिनट लगने चाहियें और सूर्यास्त तक इसी प्रकार २-२ घण्टे पीछे इतना ही दूध पीते रहो। १०-१५ दिन तक यही क्रम चलता रहे। इन दिनों में दूध के अतिरिक्त और कोई आहार न कीजिये और जलसे भी बचिये। यदि इससे भी अधिक देह भार बढ़ाना अभीष्ट हो तो इस प्रक्रिया को इसी प्रकार फिर दुहराइये।

टिप्पणी—दूध पीने से वमन होने लगे तो एक लीमू का रस लेकर बराबर के उष्ण या शीत जल में मिला कर पीजिये। जिन्हें दूध अनुकूल न पड़े, उन्हें प्रत्येक बार पाचनार्थ नींबू रस की कुछ बूंद मिला लेनी चाहियें। यह दुग्धकल्प लैंगिक निर्बलता (पुंस्त्व हीनता) के लिए विशेष गुणकारी है और सब अभीष्टों का साधक है। इसके साथ काली मुनक्का, खूबानी और अनार का सेवन भी लाभदायक है।

देहभार घटाने की विधि

केवल फलों और गिरियों का आहार देहभार घटाने का सुन्दर और निश्चित उपाय है। उपवास भी वांछनीय और अच्छा है। देह की स्थूलता हटाने के लिए २४ घण्टे में केवल एक बार मध्याह्नोत्तर २ बजे आहार भरोसे का उपाय है। जल में शुद्ध शहद मिला कर पीना इस उपाय का एक और उपयोगी सहा-यक है।

क्षुधानाश

क्षुधानाश आपके लिए सावधानता की लाल झण्डी है कि

आपके ओज का अतिव्यय पूर्ण ही हो चुका है। ३ दिन का उपवास केवल जल पर अथवा ताज़े फलों के रस पर रह कर कीजिये। अपने बृहदंत्र को वस्ति से प्रतिदिन स्वच्छ करते रहिये अथवा इन ३ दिन में जैतून तैल का उपचार कीजिये। जिस दिन मुंह में पानी छूटने लगे और आपको वास्तविक क्षुधा प्रतीत हो, वही उपवास की पारणा (व्रतांत भोजन) का समुचित समय है। आहार की वास्तविक क्षुधा आपको यह सूचना है कि देह में आहार पहुंचाने की आवश्यकता है। प्रथम दिन कोई रसीले फल खाओ और तत्पश्चात् धीरे-धीरे अपने पूरे आहार पर पहुंच जाओ।

आहार का पाचन

आहार मुंह में जाते ही, जिह्वा तथा दांतों की सहायता से मुख में ही लालारस में मिलकर अन्ननलिका में होकर आमाशय में पहुंचता है। वहां आमाशयिक ग्रन्थियों से निकला हुआ आमाशयिक रस (गैस्ट्रिक जूस) उसमें मिलता है। आमाशय में से आहार ४॥ घण्टे रहकर लुगदी (Paste के रूप में पक्काशय (Duodenum) में होकर अग्न्याशय रस से (Panereatic juice) मिल कर क्षुद्रांत्रों में चला जाता है। वहां भी उसमें क्षुद्रांत्रों का रस मिल कर पाचन क्रिया की पूर्ति करता है। इस रस के मिश्रण से आहार तरल हो जाता है और उसको २२ फीट लम्बी क्षुद्रांत्रां के तल में स्थित सलवटों (Folds = Villi) की धमनियां (रक्त नलिकायें = Arteries), शिरायें (Veins) तथा

लसिका वाहिनियां Lymphatic vessels) सोख लेती हैं। रक्तनलिकायें मांसपोषक तत्व (Protien) और कर्बोज को सोख कर रक्त में मिला देती हैं। लसिका वाहिनियां वसा (स्नेह द्रव्य) कणों को सोख लेती हैं। क्षुद्रांत्रों से बचा हुआ आहारांश (Waste food) ही नीचे की बृहदंत्रों (Large intestine) में जाने पाता है। आहार को क्षुद्रांत्रों से बृहदंत्रों में जाने में ५ घंटे लगते हैं। इस प्रकार प्रति घंटा २ फीट की गति से प्रायः १२ से २० घंटों में मुख प्रविष्ट आहार की मात्रा पूरी होकर गुदा-द्वार (Anus) से उसका वाकस (विष्ठा=Faceas) के रूप में बाहर निकल जाता है। बृहदंत्रों में जाने वाले इस वाकस का रूप आदि में तरल ही होता है, किन्तु बृहदंत्रों के अंकुर (Villi) तरल को सोख लेते हैं और अवशिष्ट मल बंधे विष्ठा के रूप में निकलता है। जैसा ऊपर कह आये हैं, तरल आहार के सारे पोषक तत्वों को पक्काशय (Duodenum) तथा क्षुद्रांत्र (Small intestines) सोख लेते हैं और यह आहार का तारल्य विरेचन (Purgation) द्वारा ही नीचे बृहदंत्र में जाने पाता है। फिर चाहे यह विरेचन रोग के रूपमें हो, वा किसी विरेचक औषधके द्वारा उत्पन्न किया गया हो। पूर्ण स्वस्थ मनुष्य की आंतें भुक्ता-हार के वाकस को २० घंटे में बाहर निकाल देती हैं अर्थात् उसे २० घंटे पश्चात् शौच अवश्य होना चाहिये। हम जो कुछ खाते हैं, उसका प्रभाव वृक्कों और यकृत् पर अवश्य पड़ता है। अतएव मनुष्य को अप्राकृतिक उत्तेजक तथा असात्म्य आहार न खाने

चाहियें और ना ही, जब तक उसको वास्तविक भूख न हो तथा वह प्रसन्नचित्त न हो तब तक उसको भोजन करना चाहिये।

भय, चिंता और क्रोध मनुष्य के सबसे बड़े वैरी हैं। ये वह ज़ंग (Rust=लोहमल) और कार्बन हैं जो हमारे शारीरिक तथा मानसिक प्रबन्ध के संयोजनों में बाधक हो कर उनका क्षय कर देते हैं। अपने शरीर-यंत्र को हम प्रसन्नता का तैल देकर स्वच्छ और चालू रख सकते हैं। कहते हैं कि भोजन-समय की प्रसन्नता और हास ईश्वर-प्रदत्त ऐसी औषध है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए सुलभ है। हास श्रांत मनुष्य को बलप्रद तथा रोगी के लिए औषधि है। हाथ-मुंह धो कर स्वच्छ स्थान में भोजन करने बैठो और प्रत्येक ग्रास को भले प्रकार चबा-चबा कर उसका सारा स्वाद ग्रहण करो। वह चबाते-चबाते आपके मुंहमें ही मीठा हो जायगा और उसका वास्तविक स्वाद चबानेसे ही प्राप्त होगा। जिस दिन आपको वास्तविक भूख न हो, उस दिन उपवास करो वा एक-दो बार का भोजन त्याग दो। यह बड़ी सस्ती चिकित्सा है। बायां स्वर चलते हुए भोजन करने से उदर में कभी कोई कष्ट नहीं होता। यह मेरा अपना ४० वर्ष का अनुभव है।

फल शाक, सलाद दूध, चोकर वाले गेहूंके आटेकी रोटी, खजूर, अंजीर, दाख और गिरियां मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है। आप यह नियम बना लें कि शाकों का रस पियें और फल खायें। जब तक आप ऊपर के सारे नियमों पर नहीं चलेंगे,

पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकते। शुद्ध रक्त से दीर्घायु प्राप्त होती है। पुराने अभ्यासों को छोड़ दो और प्राकृतिक आहार को ग्रहण करो।

भोजन के पश्चात् कुछ समय विश्राम कर लो और फिर कुछ देर टहल कर अपने काम में लग जाओ। टहलने से आमाशय को बल प्राप्त होता है।

उपवास (Fasting)

उपवास सब रोगों की प्राकृतिक औषध है, वह आमाशय को विश्राम देता है और स्वास्थ्य का सर्वोत्तम साधन है। आप के देह की पुकार है कि आप अपने भीतर के विषों को बाहर निकालें। विज्ञ जनों को उपवास के विलक्षण सुफलों का ज्ञान हो गया है और आज वह स्वास्थ्याभिलाषियों की चर्चा का विषय है। उपवास दीर्घ जीवन की कुञ्जी है। जब कोई मनुष्य रोगी पड़ जाय वा उसका चित्त गिरा प्रतीत हो, तो उसका प्रारम्भिक उपाय उपवास बतलाया गया है। उपवास का प्रारम्भ प्रथम आहार के परित्यागसे और अन्त स्वाभाविक क्षुधाके प्रत्यावर्तन तथा प्रतीति पर होता है। इसके विपरीत प्रायोपवेशन (भूखे मरने) का प्रारम्भ स्वाभाविक क्षुधा की प्रतीति से और अन्त मृत्यु के साथ होता है। उपवास अनुभूत प्रयोग तथा युक्तियुक्त क्रिया है। यह दैनिक व्यय को भी बचाता है। उपवास का अवलम्बन अन्तिम उपाय के रूप में कभी न करना चाहिये। आज कल ये मूर्खता फैली है कि रोगी जब सब औषधियां करके हार जाते हैं तब हारे हुए के हथियार के रूप

में उपवास पर उतारू होते हैं। किन्तु उसको प्रारम्भिक उपाय मान कर रोग के प्रारम्भ में ही करना चाहिये. तभी वह पूरा लाभ पहुंचाता है। बहुत दिन बीतने नहीं पाते कि उपवास का स्वास्थ्यप्रद प्रभाव प्रकट होने लगता है। लोगों का यह दुराग्रह तथा मिथ्याधारणा सबसे बड़ी मूर्खता है कि उपवास कोई तपस्या है, जिसे विरले जन ही कर सकते हैं। पशु तक कभी कभी उपवास करते देखे गये हैं। यदि कोई मनुष्य प्रत्येक १५ दिन में एक उपवास कर लिया करे तो उसे कोई रोग होना कठिन है। जो लोग कभी उपवास नहीं करते, वे स्वल्पायु होते हैं। उपवास सब से बड़ा रक्तशोधक है और इससे ह्रासोन्मुख जीवनी शक्ति पुनः लौट आती है। उपवास से आध्यात्मिक शक्ति भी बढ़ती है। बहुत से महात्माओं और आजकल विश्वविख्यात महात्मा गांधी ने भी उपवास से विलक्षण आत्मिक बल प्राप्त किया है। गत वर्ष एक जैन मुनि मिश्रीलाल ने पूरे २५७ दिन का उपवास केवल जल पर रह कर किया था और उसके पश्चात् वे १ वर्ष तक अपने ध्येय की पूर्ति-पर्यन्त जीवित रहे। ऐसे तो सहस्रों मनुष्य विद्यमान हैं जिन्होंने पूरे ५० दिन उपवास किया है और और वे असाध्य रोगों से अच्छे हो गये हैं। प्राचीन काल में तो उपवास ही एक मात्र सर्वसम्मत चिकित्सा थी; वह सुगम है, कठिन नहीं। उदर को आहार के ईन्धन से भरना बन्द कर दीजिये और सहिष्णुता का अभ्यास कीजिये। आत्म संयम के बल का संग्रह कीजिये। औषधियां तो, अधिकाधिक केवल, रोगी का ढाढ़स बन्धाने का काम करती हैं। वे रोग को दबाती

या उभारती हैं, उसका उन्मूलन नहीं करतीं—रोगीको पूरे प्रकारसे अच्छा नहीं करतीं।

उपवास स्वास्थ्यमार्ग का सुगम सोपान है और रक्त को विकृत करने वाले मलों को देह से बाहर निकाल कर उसको विशुद्ध बनाने का प्रतिक्षण साधन प्रस्तुत करता है। उसका अभ्यास अभी से डालिये। यूनानी तथा मिश्र देश वासी उसका प्रयोग पूरा-पूरा जानते थे और अब तक असाध्य माने जाने वाले फिरंग रोग (Syphlis) का उन्मूलन वे केवल उपवास से ही करते थे।

किसी भी रोग के प्रकट होने पर ३-४ दिन का उपवास साधारण उपाय है। इन दिनों में कुछ भी न खाना चाहिये। शीत या तप्त जल जितना भी पिया जा सके पीजिये। यत: इस अवधिमें अन्त्रोंके काम न करने की सम्भावना है, क्योंकि उन में इतना मल इकट्ठा हो गया है और ऐसा चिपटा हुआ है कि बाहरी सहायता आवश्यक है। इस लिए प्रत्येक उपवास में 'आभ्यन्तर स्नान (बृहदंत्र प्रक्षालन = वस्तिकर्म = Colon flushing या एनिमा) करते रहने का नियम है। मेरी अपनी सम्मति वस्ति लेने की नहीं है और मैं उपवास के दूसरे दिन से ही फलों के रस पर्याप्त मात्रा में रोगी को पिला कर इस मल-विसर्जन के कार्य में सहायता लेता हूं। जो लोग पुराने विचारों के आधार पर वस्ति लेने से कतराते हैं, उन्हें जैतून तैल का आभ्यन्तरस्नान (Olive bath) कराया जाय।

उपवास दैहिक रोगों को दूर करने का, मनुष्य को अब तक परिज्ञात, सर्वोत्तम तथा वास्तविक उपाय है। उग्र रोगों की चिकित्सा में उसकी बराबरी कोई चिकित्सा विधि नहीं कर सकती। उपवास से आपके पुराने पाप भी हलके पड़ जाएंगे। यह भूमण्डल की सारी चिकित्साओं से सबसे बड़ी है और सबके लिए सर्वोपरि, सर्वोत्तम स्वास्थ्य साधन है। यह केवल हमारा ही विचार नहीं है, किन्तु प्राचीन आयुर्वेद का भी यही निश्चित मत है। वैद्यों में यह पद्य प्रसिद्ध है—

अभूमिजमनाकाश्यं सर्वरसविवर्जितम्।
पूर्वाचार्यविनिर्दिष्टं लंघनं परमौषधम्॥

अर्थ—लंघन या उपवास ऐसी औषध है जो न भूमि से उत्पन्न होती है और न आकाश से जन्म लेती है। उसमें कोई कडुआ, कसैला, चर्परा रस (स्वाद) भी नहीं है। पुराने आचार्यों ने उसका विधान किया है।

सामयिक उपवास

१–२ दिन का पूर्ण उपवास, १–२ समय का लंघन या प्रातराश का परित्याग ये सब उपवास के भेद हैं। जो स्वसामर्थ्यानुसार उन्हें करते हैं, वे उनसे स्वसीमातक लाभ अवश्य उठाते हैं। यदि कोई मनुष्य प्रति पक्ष (१५ दिन) में एक उवपास का अभ्यासी बन जाय तो उसे निश्चय ही सुन्दर स्वास्थ्य तथा समृद्धि की प्राप्ति होगी। उपवास की अवधि के विषय में कोई कठोर तथा निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता।

इस विषय में प्रकृति ही हमारी सबसे बड़ी पथप्रदर्शक हो सकती है ।

एक अतिजीर्णरोगी जिसके रोग की असाध्यताकी व्यवस्था एक सर्वोच्च चिकित्सक अधिकारी दे चुका था, निम्नलिखित प्रकार से स्वस्थ हो गया था । प्रथम उसने ३० दिन तक ३ संतरों के दैनिक आहार पर रह कर उपवास किया था, तत्पश्चात् उसने केवल जल पर रह कर २० दिन का उपवास किया । पुनः दुबारा ३० दिन तक ३ संतरों के रस के दैनिक आहार पर सन्तोप करके दूसरा उपवास किया । और अन्त में १२ दिन का तीसरा उपवास ६ संतरों के रस के दैनिक आहार पर रह कर किया था । ६० दिन की अवधि बीतने पर उसने कहा कि अब मैं स्वस्थ प्रतीत होता हूं । उस समय उसी अधिकारी ने भी उसकी पुनः परीक्षा करके उसे पूर्ण स्वस्थ (' Quite fit") होने का प्रमाण पत्र दिया । उस रोगी को जब कभी कोष्ठबद्ध प्रतीत होता था, वह ऊंचाई से प्रयुक्त वस्ति-कर्म (Gravity douche) कर लिया करता था ।

एक ४ मास का शिशु अंत्रज्वर (Typhoid fever) में ग्रस्त था और उसके बचने की कोई आशा न रही थी । मैंने उसे जल के अतिरिक्त और कुछ न देकर ३ दिन के उपवास से अच्छा कर लिया । उसे माता का दूध भी नहीं दिया गया था । जल भी दिन में ४ बार तथा रात में २ बार दिया जाता था ।

उपवास से मृत्यु का भय केवल मूर्खता है । देह उस

समय तक अपने संजीवक वा मार्मिक अंगों (Vital parts) से अपना पोषण नहीं करता, जब तक वह निरर्थक सारे विषों और वसाद्रव्यों का देह में से क्षय नहीं कर लेता है। पोषकद्रव्यों का आहार बिल्कुल बन्द कर दो, जिससे देह अन्य प्रकार व्यय होने वाले अपने बलको अस्वाभाविक, पूर्वभुक्त आहार के सात्म्यीकरण तथा तज्जन्य विषनिष्कासन में लगा सके।

ज्वर तथा उग्ररोगों में भोजन का पूर्ण परित्याग है। पेट भर कर ठसाठस खाकर उपवास समय के भोजनाभाव की पूर्ति करने की कुप्रवृत्ति से सदा बचे रहो।

हमारे देह में विकृत पदार्थों के प्रवेश के दो पथ हैं। एक नाक में होकर फेफड़ों में को और दूसरा मुख में होकर आमाशय को जाता है। नाक और मुख हमारे देह दुर्ग के दो संतरी हैं। उन्हें अपना काम पूरी सचाई से करने दीजिये। उनको अप्राकृतिक पदार्थों का उत्कोच (रिश्वत) देकर स्वकर्तव्यभ्रष्ट न कीजिये।

उपवास सहिष्णुता की कसौटी है। बनाव चुनाव या फैशन स्वास्थ्य का वैरी है। अति से सर्वत्र बचो। अब यह प्रमाणित हो गया है कि उपवास के दूसरे दिन से लेकर ४थे दिन तक आहार की अस्वाभाविक इच्छा का लोप हो जाता है और वास्तविक क्षुधा तब तक नहीं जाती, जब तक हम कुछ खा न लेवें या भूखे रह कर मर न जांय। उपवास देह के पुनरुद्धार (Regenerations) की प्रक्रिया है। उपवास को प्रायोपवेशनके

साथ न गड़बड़ाना चाहिये । इन दोनों में महान् अन्तर है । हम को चाहिये कि दोनों का भेद भले प्रकार समझ लेवें । प्रायोपवेशन का अंत उस समय होता है, जब उपवास का आरम्भ होता है। उपवास हितकर है तथा प्रायोपवेशन हानिकर है। उपवास बल के व्यय को घटाता है और प्रदाह या शोथ की दशा में ताप को कम करता है।

जब कोई मनुष्य स्वेच्छा से उपवास करता है तो कभी २ ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जिनसे भय होने लगता है, किंतु इसका कारण यह है कि हम उन भयों के मूल तथा वास्तविक दशा को नहीं समझते हैं । कभी २ उपवास में हृदय धड़कने से रोगी समझता है कि उसके हृदय में बड़ी पीड़ा हो रही है। कभी २ उसके देह का तापमान बढ़ जाता है वा शिरोवेदना होती है। जिह्वा पर श्वेतिमा जम जाती है । यह निश्चित चिह्न हैं कि शरीर के भीतर शुद्धि की प्रक्रिया हो रही है । जिह्वा स्वच्छ होने लगे तो उपवास को बन्द करने का विचार करना चाहिये ।

संक्षेपतः उपवास के निम्नलिखित भेद हैं :—

१– आहार तथा पान का पूर्ण परित्याग। इसके लिए शीतकाल उपयुक्त है ।

२– जल के अतिरिक्त, आहार का पूर्ण परित्याग ।

३– जल के साथ फलों का आहार ।

४– सामयिक उपवास ।

कृपया उपवास के आरम्भमें कोई आहार ग्रहण न कीजिये

और जब प्यास लगे, शीत या तप्त जल का एक गिलास आवश्यकतानुसार बार २ पीते रहो। जल को घूंट २ करके पीजिये। रात को कोसे जल की वस्ति कर लिया करें और अगले प्रातःकाल की शांतिपूर्वक प्रतीक्षा करें– शांत लेटे रहें। केवल जल लेते हुए पूर्ण उपवास एक साधारण बात है। मृत्यु का भय कभी न करो। विज्ञान ने यह स्वीकार किया है कि उपवास से मृत्यु कभी नहीं होती। सफलता आपको स्वयं दिखलाई देगी।

नियम यह है कि उपवास उस समय तक नहीं तोड़ना चाहिये, जब तक कि स्वाभाविक क्षुधा न प्रतीत हो। जब जिह्वा पर लालिमा, श्वास में माधुर्य तथा मुंह में पानी भर आये, तभी उपवास तोड़ना ठीक है। उपवास इस तरह तोड़ना चाहिये :—

संतरा, अंगूर, लीमू, पपीता, टमाटर आदि में जो भी ताज़ा फल मिल सके, उसका रस दिन में ३ वा ४ बार। प्रथम दिन इनमें से किसी एक या दो फलों का ५॥ छटांक (११ तरल औंस टम्बलर) रस। दूसरे दिन विशुद्ध धारोष्ण दूध भी फलों के आहार के साथ पिया जाय। इसके पश्चात् १५ दिन तक प्रतिदिन गूदेदार फलों और शाकोंके सलादका आहार किया जाय तथा शुद्ध मधु का भी प्रयोग करते रहें। श्वेतसारीय पदार्थों का आहार सब से अंत में हो।

टिप्पणी—उपवास के पश्चात् आहार में पूरी सावधानी रखनी चाहिये और जीवन की हानिकारक आदतें आगे के लिए बदली जानी चाहियें। उपवास स्वयमेव नियमवर्त्तिता का

अभ्यास है। रोग जितना उग्र होगा, उतना ही अधिक लम्बा उपवास करना पड़ेगा।

फलोपवास

अन्य सब आहार छोड़ कर, ३ से ५ दिन तक, इनमें से किसी एक फलका आहार कीजिये। दाख, खजूर, अंजीर, खूबानी, सूखा आलू बुखारा। जल पीते रहिये और प्रतिदिन वस्ति करते रहिये। उपवास तोड़ने पर, प्रथम दो दिन तक ताजे फलों का रस पीजिये और धीरे २ (ऊपर लिखे अनुसार) फलों तथा शाकों के सलाद पर आ जाइये।

टिप्पणी—दूध और फलोंका संयोग लाभ पूर्वक हो सकता है। शुष्कफल खाने से पूर्व भले प्रकार धो लीजिये। प्रतिदिन के आहार में आध सेर फल पर्याप्त हैं। पानी आहार के दो घण्टे बाद पीजिये। इस प्रकार फलोपवास करने से क्लोमकंडिका (Bronchial tube) के सारे रोग चले जाते हैं और पुराना कोष्ठबद्ध भी दूर हो जाता है। प्रौढ़ पुरुष का आहार दिन रात में तीन बार से अधिक कभी न होना चाहिये। जीर्णकास और श्वास में भी उपवास अतीव उपयोगी है। मेरे (अनुवादक) के रचित इन संस्कृत पद्यों को सदा स्मरण रखिये :—

विना युद्धं जयो नास्ति, शमो न संयमं विना।
स्वास्थ्यं न लभ्यते तावत्, यावत्कायो न निर्मलः॥
शाकानां सुफलानां च, कुरुत भोजनं सदा।
तेनैव देहनैर्मल्यं, प्रशस्तं किन्ततो भवेत्॥

अर्थ—युद्ध के बिना जय और संयम के बिना शांति नहीं प्राप्त होती। जब तक शरीर शुद्ध न हो, तब तक स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं होती। शाकों और फलों का सदा आहार करने से ही, आपका देह निर्मल और विशुद्ध रहेगा। इससे सुन्दर और क्या बात हो सकती है।

आभ्यंतरस्नान (Internal Bath) वा—
बृहदंत्र प्रक्षालन (Colon flushing)

आभ्यंतरस्नान वा बृहदंत्रप्रक्षालन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कवोष्ण जल पर्याप्तिमात्रा में गुदद्वार (Anus) के मार्ग से गुदनलिका (Rectum) तथा बृहदंत्र (Colon = मलाशय) में भर कर उन दोनों का प्रक्षालन किया जाता है। यह जल १०–१५ मिनट तक भीतर रुका रहना चाहिये, जिससे आंतों की (Flushing) भीतरी भित्तियों पर चिरकाल से चिपटा हुआ और अज्ञानवश प्रतीत न होता हुआ कठोर मल (जिसके कारण विषों की उत्पत्ति हुई और जो स्वाभाविक रीति से बाहर नहीं निकल सका है) मृदु पड़ कर घुल जाय। यह प्रक्रिया हमारे प्राचीन पूर्वज आर्यों को ज्ञात थी और पुरातन आयुर्वेद ग्रन्थों में वस्तिकर्म नाम से इसका व्यपदेश तथा सविस्तर वर्णन है। आयुर्वेद के सब से प्राचीन ग्रंथ चरकसंहिता में एक अध्याय ही वस्तिकर्म-विधि से परिपूर्ण है और निम्नलिखित पद्यों में उसकी महिमा इस प्रकार गाई गई है :—

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगाः,

मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगताश्च ।

वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति,

ये संति तेषां न तु कश्चिदन्यो ॥३८॥

विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां,

विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।

तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्,

वस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचित् ॥३६॥

तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवंति,

सर्वां चिकित्सामपि वस्तिमेके ॥४०॥

चरक, सिद्धिस्थान, १म अध्याय, श्लोक ३८-४०

आयुर्वेद के आकर संग्रह ग्रन्थ वाग्भट्टकृत 'अष्टांगहृदय' के सूत्र स्थान अध्याय १६ में भी यह पद्य निम्नरूप में, कुछ पाठांतर से, विद्यमान हैं :—

तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्,

वस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचन।

तस्माच्चिकित्सार्धमिति प्रदिष्टः,

कृत्स्ना चिकित्सापि च वस्तिरेकैः ।

अर्थ—वायु के बढ़े हुए कोप (वायु-रोगों में) के लिए वस्तिके अतिरिक्त कोई और औषध नहीं है इस लिए किन्हीं

आचार्यों ने वस्ति को आधी चिकित्सा कहा है और किन्हीं की सम्मति में वस्ति ही सारी चिकित्सा है।

हठयोग में वस्ति को न्योलिक्रिया कहते हैं और उसके अभ्यासी जन किसी जलाशय में बैठ कर गुदस्थ मांस पेशियों के संकोचन से ही किसी यंत्र की सहायता के बिना जल को गुदद्वार से स्वयमेव भीतर ले जाते हैं और उससे मलों को बाहर निकाल कर शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। वे प्रतिमास दो बार यह न्योलिकर्म अवश्य करते हैं।

यंत्र द्वारा आभ्यन्तर स्नान (वस्तिकर्म) की विधि निम्नलिखित है—

वस्तियन्त्र (Irrigator) में १ जल पात्र, १ छः फीट लम्बी रबरकी नली और उसके आगे लगा हुआ एक नेत्र—(जलके मथने पेंच द्वारा भीतर ले जाने का यन्त्र=Nozzle) यन्त्र होते हैं। वस्तियंत्र के जलपात्र को दीवार में गढ़ी हुई कील पर ३ ४ फीट ऊंचा इस प्रकार टांग देते हैं कि गुदद्वार तक सुगमता से पहुंच सके। रबर की लम्बाई ६ फीट होनी इस लिए आवश्यक है कि उसमें के जल का दबाव नीचे की ओर पर्याप्त पड़ सके, इसी लिए इसको गुरुत्व प्रवाहक प्रणाली (Gravity douche system) कहते हैं। जलको इस रीति से भीतर लीजिये - दायीं करवट इस प्रकार लेट जाओ कि बायां हाथ कमर के पीछे रहे और दायीं ओर की छाती का पार्श्व भाग नीचे की ओर झुका रहे। पहले रबर की नली की वायु बाहर निकाल कर उसके नेत्र

(Nozzle) को दायें हाथ से गुदनलिका के भीतर प्रविष्ट करो। नेत्र के अग्रभाग पर प्रथम घी, तेल या वेस्लीन लगा देनी चाहिये, जिससे वह सुगमता से भीतर को चला जाय। अब नेत्र का पेंच घुमा कर उसे खोल दो और उसमें को पात्र का जल शनैः शनैः भीतर जाने दो। प्रथम बार वस्ति कर्म करने पर १० छं० (१ कार्ट) जल पर्याप्त होगा और निर्बलता में भी इतना ही जल ठीक है। जल की उचित मात्रा भीतर चले जाने पर १०-१५ मिनट तक चुपचाप सीधे लेटे रहो और पेट को बृहदंत्र रेखा में आते ही बृहदंत्र (Ascending colon) से अनुप्रस्थ बृहदंत्र (Transverse colon) पर लाकर वस्ति गुदा प्रदेश (Pelvis region) में बायीं ओर स्थित अवारोही बृहदंत्र (Descending colon) पर समाप्त कर मलते रहो। आटा गूंदने की क्रिया के समान मुट्ठी से दवाते जाओ अर्थात् मर्दन कला की परिभाषा में लेखनक्रिया (Kneading) करो। इसके पश्चात् उठकर मल त्याग करो। अच्छा तो यही है वस्तिक्रिया में उष्ण जल काम में लायें। यदि वस्तिके जलमें १ चमचा (१ डराम=४ माशा) खाने का नमक मिला लें तो वह जारण-प्रतिरोधक (Disinfectant) का काम देता है। किन्तु यह इच्छा पर निर्भर है, अनिवार्य नहीं। दारुण कोष्ठबद्ध में, जो प्रायः उपांत्र-प्रदाह (Appendicitis) रोग में चिरकाल से एकत्रित शुष्क मलों के संचय के कारण होता है, २॥ छं० (५ औंस=१ प्याला) शीरा या २ चमचे गिलसरीन वस्ति जल में मिला लें तो उग्र विरेचक (Cathartic)

होता तथा विलक्षण गुण दिखाता है। ५ से १० तोले (२ से ४ औंस) तक अरंडी-तेल भी यही काम करता है।

मेरी सम्मति में वस्ति की यह स्थिति सर्वोत्तम है कि वस्ति लेने वाला मनुष्य घुटने सिकोड़ कर लेट जाय और अपने सिर तथा कंधों को तकिये के सहारे रखे। नितंबोंको यथासम्भव एक दूसरे तकिये से ऊंचा कर लेवे।

टिप्पणी-- किसी मनुष्य को सदा के लिए वस्ति का अभ्यास नहीं डाल लेना चाहिये।

आर्द्र वस्त्रवेष्टन (Wet sheet pack)

एक खट्वा पर दरी या खद्दर का खुर्दरा वस्त्र फैला दो। इस पर दो कम्बल फैलाओ। फिर खद्दर की ५ फीट चौड़ी ६ फीट लम्बी चादर तथा ३ फीट चौड़ा ४ फीट लम्बा तौलिया ठंडे जल में भिगोकर निचोड़ लो। रोगी नग्न होकर कंबलों पर लेट जाय। तौलिया उदर के चारों ओर लपेटो और फिर सारे शरीर को चादर से ढांप दो। मुंह और नाक खुले रहें। तत्पश्चात इन कंबलों को मुंह तथा नाक को छोड़ सारे शरीर पर सावधानी से लपेट कर रोगी को सुला दो। रोगी बहुत निर्बल हो तो उष्ण जल से भरी दो बोतलें उसकी टांगों से सटा कर रख दो। १-२ घंटे में उसे पसीना आने लगेगा। पसीना आ चुकने पर, उसके ऊपर के वस्त्र हटा कर, गुनगुने जल के स्पंज से देह पोंछ दो २-३ मिनट हाथों से मल कर सुखा दो। फिर वह उठकर वस्त्र पहन ले।

यह क्रिया जीर्ण (Chronic) रोग में नित्य करनी चाहिये ज्वर में जब शीतजल में भीगा तौलिया लपेट कर कंबल ढके जाते हैं तो शीतजल के प्रभाव से प्रबल प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है, और स्वेद ग्रन्थियों को उत्तेजना मिल कर रोगी को तत्काल पसीना आने लगता है। इस प्रकार देह को विषैले द्रव्यों से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है।

आर्द्र मर्दन (The wet rub)

शीत जल में लगातार हथेलियां डुबो कर या मोटा तौलिया भिगो और कुछ निचोड़ कर इस क्रिया का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार सारे शरीर को फुर्ती से २-३ मिनट हाथ ठंडे जल में भिगो कर मलना चाहिये। इस प्रकार हथेलियों से मलते हुए देह को सुखा कर वस्त्र पहना दीजिये।

उदर-स्नान (Citz or Hip bath)

किसी टब, चौड़े जलपात्र या स्नान के टब में इतना पानी भरो कि वह उसमें आपके बैठने पर आपके नितंबों से नाभितल तक आ जाय। इस टब में अपनी टांगों और पैरों को जल से बाहर निकाल कर २ से ४ मिनट तक बैठे रहो और इसी दशा में बैठे हुए पेड़ू प्रदेश (Abdominal regions) तथा जंघाओं के बीच के भागों को भले प्रकार मलते रहो। यह मर्दन दोनों हाथों से १ से ३ मिनट तक फुर्ती के साथ करते रहो। फिर बाहर निकल कर देह को खुर्दरे तौलिये से सुखा लो। ध्यान रहे कि

इस स्नान का जल शीतल हो। इससे बहुत पुराने दारुण रोग चले जाते हैं। आमाशय रोगों में तो यह विशेष लाभप्रद है।

एप्सम लवण-स्नान (Epsom salt bath)

एप्सम लवण मैग्नेशियम सल्फेट (Magnesium sulphate) का दूसरा नाम है, जो इंग्लेंड के सरे (Surrey) प्रांतांतर्गत एप्सम (Epsom) नगर पर पड़ा है। इस स्नानमें उपर्युक्त उदर-स्नान (Citz or Hip bath) से इतना ही अंतर है कि स्नान के जल में १ या १॥ सेर साधारण एप्सम नमक घोल देते हैं और उसी में ऊपर वर्णित रीति से उपर्युक्त स्नान किया जाता है।

जैतून-तैल आभ्यन्तर स्नान (Olive oil bath)

जिसदिन जैतून तैलका आभ्यंतर स्नान करना हो, उसदिन प्रातः से वा मध्यान्होत्तर कुछ न खाओ। ५ बजे सायं ३ माशा सनाय के पत्रों का एक बड़ा गिलास (५ छटांक) क्वाथ (काढ़ा); चाय की तरह तैयार करके, पीलो और सोते समय ५ छं० (१ बड़ा गिलास = Tumbler) जैतून तैल ठंडा या गरम पीकर दांयी करवट सो जाओ। कुछ मिनट तक जी-मिचलाहट का कष्ट होगा डरिये नहीं, यह स्वयं शांत हो जायगा। अगली प्रातः कल के समान १ प्याला सनाय का क्वाथ और पीजिये। इससे आपकी लगभग ३० फीट लम्बी अन्न प्रणाली (Alimentary Canal) बिल्कुल स्वच्छ हो जायगी और इसमें का रुका हुआ गंदा मल निकल जायगा। यह प्रक्रिया १५ दिन में १ बार से अधिक बार

नहीं करनी चाहिये । जीर्ण रोगों में इसकी सफलता भले प्रकार प्रमाणित हो चुकी है ।

ताप और शीत का प्रयोग

विभिन्न रोगों की चिकित्सा में ताप तथा शीत के प्रयोग से पर्याप्त लाभ उठाया जा सकता है । शीत बलप्रद है (Cold is tonic) और देहाग्नि को अधिकतर उष्णता उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है । देह के किसी भाग में मंदता आने पर, वह तन्तुओं (Tissues) की प्रतिरोधशक्ति को स्थिर रखने में सहायक होता है । शीतल जल का प्रयोग शारीरिक क्रिया की पुनः स्थापना के लिए एक निश्चित उपाय है । ताप का प्रभाव इसके विपरीत है । वह तन्तुओं को शिथिल करता है और यदि लगातार प्रयोग किया जाय तो सम्भव है कि वह तन्तुओं को निर्बल कर देवे । रोगों से छूटने और देह से उनके निष्काषण के लिए ताप तथा शीत के प्रयोग विपर्याय से किये जा सकते हैं ।

धूप स्नान (Sun bath)

पुरानी कहावत है कि यदि आप घर में सूर्यकी किरणों का प्रवेश करते रहें तो वहां वैद्य का प्रवेश कभी न होगा आपसे जितना बन पड़े, धूप में रहिये । धूप लीजिये—उसकी सेक शरीर को दीजिये यही धूप स्नान है । इससे आपके रक्तकणों में लालिमा आ जायगी और देह के किसी भाग की पीड़ा वा रक्तसंघात दूर हो जायगा । देह के पीड़ित भाग को सीधा सूर्यकिरणों के नीचे रखना चाहिये । इस भूमंडल में सूर्य सब के लिए जीवन का स्रोत

है ! प्रथम दिन ४ मिनट, दूसरे दिन ६ मिनट और तीसरे दिन ८ मिनट धूप में रहें इसी प्रकार समय की मात्रा बढ़ाते जांय और १ घण्टे तक धूप में रहने का अभ्यास हो जाने पर रुक जाइये। धूप में रहने से सूर्याघात (Sunstroke) की आशंका न कीजिये धूपस्नान के पश्चात् सदैव उदरस्नान करना चाहिए और उसके पश्चात् शरीर को मल कर सुखा लीजिये।

साधारण स्नान

साधारण स्नान में कभी प्रमाद न करना चाहिए, ग्रीष्म ऋतु में सायं प्रातः स्नान अवश्य कीजिये। हम फेफड़ों के समान ही त्वचा में भी श्वास लेते हैं, हमारी त्वचा २४ घण्टे में ६ छटांक मल शरीर से बाहर निकालती है, जो फेफड़ों के निकाले हुए मल की प्रायः दुगुनी मात्रा है और शरीर से बाहर निकलने वाले सारे मल का दो तिहाई भाग है। यदि ग्रीष्मऋतु में किसी को पसीना न आता हो तो उसे सूर्याघात (Sunstroke) का भय रहता है। आजकल त्वचा द्वारा मल के निष्कासण में इतना प्रमाद किया जा रहा है कि इस बात को हम भूल से गए हैं कि रोम-कूपों के द्वारा भी मल बाहर आता है। त्वचा क्षुद्र स्वेद ग्रंथियों से परिपूर्ण एक आवश्यक मल निष्काषक अंग है। त्वचा में जितनी अधिक वायु का प्रवेश होता है, उतना ही रोगों से प्रतिशोधार्थ, उसका अधिकाधिक पोषण होता है। देह की समग्र त्वचा में कम से कम ३० लाख से १ करोड़ तक रोमकूप होते हैं। उन सबको मापा जाय तो उनकी लंबाई २८ मील होगी। पसीने द्वारा हमारे शरीर से २८ प्रतिशत मलिन जल प्रतिदिन निकलता है। प्रत्येक

ऋतु में प्रतिक्षण उन रोमकूपों में वायु प्रवेश हमारे लिए अत्यावश्यक तथा अनिवार्य है। अतः उनको खुला रखने के लिए प्रतिदिन प्रातः स्नान करना चाहिये। सूर्योदय से पूर्व स्नान कर लिया जाय तो सारे दिन चित्त प्रसन्न तथा स्फूर्ति युक्त रहता है। शीतलजल से स्नान अधिक अच्छा है किन्तु रोगी तथा निर्बल मनुष्य गुनगुने जल से नहा सकते हैं। स्नान के पश्चात् खुर्दरे तौलिये से वा खद्दर के वस्त्रखण्डसे शरीर को रगड़ कर सुखाने से देह में रक्त संचार बढ़ता है और नाड़ियों को बल प्राप्त होता है। जल का स्नान अच्छा है, वायुस्नान उससे भी अच्छा है और धूपस्नान सर्वश्रेष्ठ है। स्नान करते हुए पहले सिर पर जल डालना चाहिए। नदी में स्नान करते हुए पहिले हाथों को और फिर अन्यभागों को जल में प्रविष्ट करके नहाना चाहिए। यदि उसी समय कमर को आगे पीछे भूमि तक लगाने का अभ्यास दो मिनट तक किया जाय तो कभी रोग पास न फटके। स्नान से श्रांति और आलस्य दूर होते हैं तथा मानसिक एवं शारीरिक कार्य के लिए देह में स्फूर्ति आती है।

वाष्पस्नान (Steam bath)

रोगी को बिल्कुल नग्न करके किसी बेंत की कुर्सी पर बिठाओ या खोड़ी (बिना वस्त्र बिछी) छिद्री बुनी हुई खाट पर सुलादो। उसके शरीर को कंबल से इस प्रकार भलीभांति ढक दो कि कंबल के सिरे चारों ओर से भूमि को छूते रहें जिससे भीतर वायु न जाय। तत्पश्चात् गरम जल के उबलते हुए दो पात्र उन

कुर्सी या खाट के नीचे रखदो और १०-१५ मिनटमें पसीना आने लगने पर इन पात्रों की भाप कम हो जाने पर उनको बदलने के लिए दो पात्र और तैयार रखो और उनको बदलते हुए आध घंटे तक पसीना लेना चाहिये। यह वाष्पस्नान गवाक्षों झरोखों) वाले बन्द कमरे में करो और ज्यूंही पर्याप्त पसीना आ चुके उठ कर देह को शीतल जल में भीगे तौलिये से पोंछ डालिये। शीतल जल से देह के ठंडा हो जाने पर रोगी को चाहिए कि अपने ही हाथों से देह को मल कर सुखा लेवे, तत्पश्चात् वस्त्र पहन कर बाहर खुली हवा में आकर व्यायाम करे। यह वाष्पस्नान त्वचा के रोगों में और पसीना न आने के रोग में बहुत आवश्यक है। किसी विशेष अंग में पीड़ा होने पर इसी विधि से वाष्प देकर उसका विकृत द्रव्य बाहर निकाल देना चाहिए। आमवात (Rheumatism) और अर्धांग (Paralysis) के लिए यह उपचार अद्वितीय तथा लाभदायक सिद्ध हो चुका है।

वायु

वायु हमारा, रात दिन के प्रतिक्षण का, आहार है। दुर्गन्धित तथा धुवां-मिली वायु कुछ क्षण के लिए भी हानिकर है। किसी भी दशा में वायु को विकृत नहीं करना चाहिए। हमें जीवन के प्रत्येक क्षण शुद्ध वायु की आवश्यकता है। अशुद्ध वायु बहुत से रोगों का कारण है। हमारा देह उस भूमण्डल का लघुरूप है, जिसमें वायु का स्थान अतिमहत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य और वायु का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यथासम्भव खुली वायु में श्वास लेने का सदा प्रयत्न कीजिये।

स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए आपका यह सर्वप्रथम प्रयत्न है। २४ घंटे में कम से कम ४ बार प्रतिदिन विशुद्ध वायु में गहरे श्वास प्रश्वास लेने का अभ्यास कीजिये। प्रत्येक बार में कम से कम ७ बार गहरे श्वास लेने चाहियें, इससे स्वास्थ्य समुन्नत होकर दीर्घायु प्राप्त होती है और रोग पास नहीं आते। इस क्रिया में मुख बन्द रख कर नाक से श्वास प्रश्वास लीजिये। श्वास प्रश्वास की ७ संख्या उगलियों पर गिनी जा सकती है और श्वास जितना अधिक भीतर खींचा जा सके, उतना ही अच्छा है। उसको उससे दुगुने समय भीतर रोक कर, शनैः शनैः बाहर निकालना चाहिए। इसी को 'प्राणायाम' कहते हैं। शनैः २ भीतर श्वास खींचने की क्रिया को 'पूरक' भीतर रोकने की क्रिया को 'कुम्भक' और बाहर निकलने की क्रिया को 'रेचक' कहते हैं। प्राणायाम वैदिकधर्मियों की नित्यप्रति की उपसना का आवश्यक अंग है। प्राणायाम करने वालों को फुफ्फुसों के रोग कभी नहीं होते।

मनुष्य की दीर्घायु उसके फुफ्फुसों के विस्तारसामर्थ्य के आश्रित है। साधारणतः प्रौढ़ पुरुष के फुफ्फुसों का विस्तार ३३५ घन इंच होता है और एक बार बाहर को श्वास लेने से यह विस्तार सिकुड़कर २२५ घन इंच हो जाता है। यदि आप प्रतिदिन कुछ मिनट इस रीति से प्राणायाम करते रहें तो आपको बल तथा संजीवनी शक्ति प्राप्त होगी। हमारे जीवन का निर्भर युक्त श्वास क्रिया पर है। हमारे प्रत्येक श्वास के साथ हमारे शरीर

में बल का संचार होता है। अधूरा श्वास लेने से छाती सिकुड़ जाती है और क्षयरोगके आक्रमणसे मृत्यु हो सकती है श्वास क्रियाका महत्व आहार, पान और व्यायामसे भी बढ़ कर है। दिनमें कमसे कम ४-५ बार दीर्घ श्वासकी प्रक्रिया सब चिकित्साओंमें सर्वोत्तम कार्यसाधक है। खेद है कि स्वास्थ्य के इच्छुक जन इस सरल स्वास्थ्य साधन के प्रयोग में प्रमाद करते हैं। इससे देह में दृढ़ता आती है और रक्त विशुद्ध आक्सीजन नामक प्राणप्रद पवनांश से समृद्धि पाता है। जीवन का मूल्य धन से भी अधिक है परन्तु खेद है कि मनुष्य अपने जीवनों को स्वयं नष्ट कर रहे हैं। वे नैसर्गिक मृत्यु से तो बहुत ही कम मरते हैं किन्तु स्वयमेव अपने को मार लेते हैं। वे अधिकांश आत्म-घातक अपराधी हैं। श्वासक्रिया में चिकित्सा का असीम सामर्थ्य है। अतः प्राणायाम का अभ्यास सदा बढ़ाते रहना चाहिये। १ मिनट में ३ बार अशुद्ध रक्त फुफ्फुसों में संशोध-नार्थ आता रहता है और श्वासक्रिया द्वारा उसका संपर्क शुद्ध वायु से होता रहता है। अतः श्वासक्रिया फुफ्फुसों के लिए बलप्रद (टानिक) है और बिना किसी औषध की सहायता के रक्त को शुद्ध करती है। कास, श्वासप्रणालियों का शोथ (Bronchitis) तथा क्षय इस प्रक्रिया द्वारा सुगमता से दूर हो जाते हैं। रक्त विषों के दहन में आक्सीजन बड़ा भारी काम करती है।

टिप्पणी—श्वास प्रक्रिया की सरल रीति यह है कि आप

आराम कुरसी या चबूतरे पर, प्रातः पूर्वाभिमुख और सायं पश्चिमाभिमुख, पैर लटका कर वा पलौथी मार कर बैठ जांय। इन दशाओं में क्रमशः प्रातः सायं सूर्य में से भारी चुंबकीय शक्ति (Maguet-force) निकलती है। आप वातायन या द्वार की ओर मुंह करके बैठें. जिससे खुले वायु का संचार आपकी ओर होता रहे। हाथों को घुटनों पर हलका रखे रहिये तथा नेत्रों और मुख को बन्द रखिये। नथनों में से दीर्घ श्वास लेते हुए, अपनी छाती तथा उदर प्रदेश को फुलाये रखिये और एक श्वास में उंगलियों पर ७ तक गिनते रहिये। श्वास बाहर निकालते हुए भी ७ संख्या गिनिये। यह प्रक्रिया बाहर खुले स्थान में बैठ कर भी की जा सकती है। भीतर को श्वास लेते हुए (पूरक में) उदर की ओर से ऊपर का श्वास लीजिये। छाती को उठाये रखिये और कंधों को भी ऊंचा रखिये। मेरुदंडको (कमर को) आराम चौकी से न लगा कर सीधा रखो और प्राणायाम के समय तंग वस्त्र या पेटी कभी न पहनो।

व्यायाम (Exercise)

व्यायाम आपके जीवन की नियमित दिनचर्या का भाग होना चाहिये। यदि आपकी रुचि किसी प्रकार की क्रीड़ा में न हो तो फुर्ती के साथ भ्रमण से आपको अवश्य आनन्द प्राप्त होगा। भ्रमण सब व्यायामों का राजा है। प्रत्येक मनुष्य को अश्वारोहण और जल में तैरना सीखना चाहिये तथा पर्वतारोहण का भी अभ्यास करना चाहिये। किसी मांस पेशी में पीड़ा प्रतीत हो तो

उस पेशी का व्यायाम कीजिये। इससे उसमें रक्त का संचार बढ़ जायगा और उसमें से लसिका (Lymph) का प्रवाह भी सवेग होने लगेगा।

निद्रा

सदा दक्षिण की ओर सिर तथा उत्तर की ओर पैर करके सोना चाहिये। प्रौढ़ पुरुषों को ६ से ८ घंटे तक, शिशुओं को १० से १२ और स्तनंधयों (दुधमुंहों) को २० घंटे सोना आवश्यक है। निद्रा नाड़ियों में बल का नवीन संग्रह, तथा देह के टूटे हुए कोष्ठकों का पुनर्निर्माण करती है। निद्रा स्वयमेव कार्यकारिणी शक्ति को रचने वाली है और बल उत्पन्न करती है। निद्रा से पूर्व अपने दिन भरके कार्यों की समालोचना और विचार करो और अगले दिन के कार्यों की तैयारी करो। पूर्ण विश्राम करते हुए देह को शिथिल रखने की आवश्यकता है। सोते हुए मुंह को खुला रखना वैसा ही आवश्यक है जैसा कि ताज़ा वायु में सोना अनिवार्य है। शयनागार के वातायन और गवाक्ष सदा खुले रखो, जिससे विशुद्ध पवन तथा प्रकाश का यथेच्छ उपभोग किया जा सके।

टिप्पणी—ग्रीष्म ऋतु में बाहर खुली हवा में सोना अति लाभदायक है। बिस्तरे पर सदा अकेले सोना चाहिये। जिनको नींद न आती हो, उनके लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी हैं:— (१) सोते समय ७ बार गहरे श्वास प्रश्वास लेने से शीघ्र निद्रा आ जाती है। (२) हाथों की उंगलियों से कानों के छेद बन्द

करके एकाग्रता से कानों में होने वाले सांय-सांय शब्द को सुनते रहने से शनैः शनैः निद्रा आने लगती है। (३) पांवों के तलुओं पर तेल मलने से भी निद्रा आ जाती है।

बद्धकोष्ठ (Constipation)

बद्धकोष्ठ सब रोगों की माता है। किसी प्रकार के उग्र रेचक औषधि का कभी प्रयोग न करो। उसका प्रभाव लाल मिर्चों जैसा होता है और उससे अन्न प्रणाली के पेशल तंतु क्षत-विक्षत हो जाते हैं। विरेचन मल विसर्जिनी पेशियों को छिन्न भिन्न कर देता है (Purging wrecks the muscles of excretion)। युद्ध से युद्ध की समाप्ति कभी नहीं होती (The war never ends the war)। १ सप्ताह तक रात को सोते समय और प्रातः उठते ही कुछ अंजीर, १०-१५ सूखी खजूर वा १०-१५ आलूबुखारे चबा कर खा लेने से दारुण बद्धकोष्ठ चला जाता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए यह नियम होना चाहिये कि वह दिन रात में जितनी बार आहार करे, २४ घंटेमें उतनी ही बार शौच जाय। दिन में १ बार शौच निश्चय ही बद्धकोष्ठ या मल-संचयाक्रांत बृहदंत्र का चिन्ह है (One bowel a day is surely a sign of constipation or a loaded colon)। शौच के वेग को कभी न रोको और न ही कभी शौच का वेग बलात् उत्पन्न करो। आयुर्वेद की प्राचीन उक्ति है: —' वेगान्न धारयेत्, वेगान्नोत्पादयेत्"। शौच बैठते हुए दायें हाथ से नाभि को दायें बायें और ऊपर से घेरे हुए बृहदंत्र के मार्ग की रेखा पर दायीं

ओर से नाभि से ऊपर को ले जाकर बायीं ओर को मसलना चाहिये, इससे रुका हुआ मल बाहर निकल जाता है। शौच का वेग रोकने से अर्शरोग (बवासीर) हो जाता है। बद्धकोष्ठ को दूर करने में विरेचन प्रयोग की चिकित्सा स्वयं उक्त रोग से भी बुरी चिकित्साविधि है। विरेचक औषधियों से महामारीके समान बचते रहो। फल, शाक तथा अखरोट को गिरी खाते रहने से भी बद्धकोष्ठ नहीं होता। बद्धकोष्ठ निवारणार्थ एक हानि रहित तथा सुलभ योग निम्नलिखित है:—

सनाय पत्रों का चूर्ण १ भाग और मधुमष्टि (मुलहटी) २ भाग दोनों को मिला कर चूर्ण के रूप में या शहद के साथ वटी बना कर प्रयोग कीजिये। इसमें से दुअन्नी भर (१।। माशा =२२ ग्रेन) की एक मात्रा रात को सोते समय वा प्रातः गरम पानी के साथ खा लेनी चाहिये, या दूध के साथ भी ले सकते हैं। वा उक्त दोनों औषधों को चाय की तरह पका कर १ तोला शहद के साथ पीजिये। इससे बृहदंत्र (मलाशय) का पूरा शोधन हो जाता है। बद्धकोष्ठ की दशा में इस योग का प्रयोग प्रति १५ वें दिन किया जाय, तो उसका उत्तम फल होता है।

साधारण आहार

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व बिस्तर से उठ कर, नियमेन शौच जाओ और शीतल जल से स्नान करो। स्नान करते हुए देह को भले प्रकार हाथों से मलो और खुर्दरे खद्दर के अंगोछे से पोंछ कर वस्त्र पहन लो। तत्पश्चात् खुली वायु में ७ बार भीतर

बाहर को गहरे सांस लो और अपने काम में लग जाओ। प्रात-राशका न करना बहुत सुन्दर आचार है। ढलती आयु वालों के लिए यह अमृत समान है। किन्तु युवा पुरुषों या श्रमिजनों के लिए निम्नलिखित पेयों में से कटोरा भर (पाव-आध सेर) एक पेय लाभप्रद है :—

शीतल या उष्ण जल, बिना उबाला और बिना मीठे का दूध, दूध का तोड़ या मट्ठा, संतरा, अंगूर, निंबू, सेब, नाशपाती, टमाटर आदि ऋतु के ताजा फलों का रस, सारी रात जल में भीगे हुए सूखे आलूबुखारों या मुनक्कों का जल यथारुचि पीना चाहिए।

निर्धन पुरुषों के लिए भारत भर में सर्वत्र प्राप्त झड़बेरी के बेरों वा कुक्करबेर के नाम से विख्यात क्षुद्र फलों को रात भर जल में भिगो कर प्रातः उनका जल पीना बहुत उपयोगी है।

मध्याह्न का आहार स्वदेश में समुन्नत ताजे या सूखे फल होना चाहिए और सायंकाल ७॥ बजे के आहार की पूर्ति जैतून तैल के साथ शाकों के सलादों से होनी चाहिये। साहित्य-सेवी जनों वा राजकीय कार्यालयों में उपस्थित होने वालों को ६ बजे प्रातः फलों का आहार करना चाहिए और उनका सायंकालीन आहार ५ बजे सायं शाकों का सलाद आदि उपयुक्त है। सोते समय वे मधुमिश्रित दुग्ध का पान करें। निर्धन पुरुष सोते समय एक गिलास जल से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं।

वनस्पतिवर्ग में से ही अपने सब से शुद्ध आहार का चुनाव

करके आहार की न्यूनातिन्यून मात्रा से अधिकाधिक पोषण ग्रहण करना चाहिए। पाचन संस्थान पर अतिभार न डालना चाहिए। अतिभोजन द्वारा मनुष्य को मधुमक्खी की वह वृत्ति न धारण करनी चाहिए, जिससे वह दूसरों को डंक मार कर अपने को नष्ट कर लेती है। ऐसी प्रसिद्धि है कि मधुमक्खी जब प्रबल डंक मारती है तो वह आप मर जाती है। मनुष्य को प्राकृतिक आहारों उपयोग में एड़ी चोटी का बल लगाना चाहिए और आधुनिक के कृत्रिम सभ्यताकी दुर्गन्धसे दूर रहना चाहिए। आग पर पकाये हुए श्वेतसारीय आहारों की मनुष्य को कुछ भी आवश्यकता नहीं जहां केले और शकरकंद की अधिकता है, वहां अन्य श्वेतसारमय आहार की खोज व्यर्थ है। जहां केले शकरकंद अलभ्य हों वहां अन्य श्वेतसारमय पदार्थ खाने पड़ें तो वह भोजन के अंत में खाने चाहिएं, क्योंकि उनमें पाचन क्रिया प्रथम मुख में होती है और सब से अंत में वे आंतों में जाकर पचते हैं। आमाशय में उनका पाचन नहीं होता। श्वेतसार घुलनशील पदार्थ नहीं है, किंतु शर्करा घुलनशील (Soluble) है। मुख का लालारस श्वेतसार को यवौज (Maltose) के रूप में परिणत कर देता है। आमाशय रस, अम्ल होने के कारण, श्वेतसारीय पदार्थ को नहीं पचा सकता। अतः सूजी की रोटी बिस्कुट, चोकररहित दलिया, चोकर रहित आटे की रोटी, भुने चने और पालिश के चावलों पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत, चोकर युक्त गेहूं की रोटी तथा दलिया, छिलके वाले चने, और बिना पालिश के चावल सुपच हैं। हमारे देह को पोषणार्थ मांसपोषक द्रव्य (Proteins

or proteids) की भारी मात्रामें आवश्यकता नहीं है और उसकी अपेक्षित मात्रा सोयाबीन, द्विदलों (दालों) पिसे हुए बादाम, मटर मसूर, मक्खन, दूध, मकई, जई और जौ आदि से प्राप्त हो सकती है। पाचन संस्थान के रोग अधिकांश अत्यधिक मृदु आहारों के सेवन से उत्पन्न होते हैं. अतएव अल्पाग्निवर्धक पदार्थों (Carbohydrates), श्वेतसार और शर्करा (यथा चावल, सागूदाना, अरारोट, आलू, केला और चुकंदर आदि) का सेवन स्वल्पमात्रा में होना चाहिए।

प्राचीन समय में मनुष्य का मौलिक आहार फल ही थे और कोई कारण नहीं है कि वर्तमान समय में, जब कि उनके गुणों की प्रतिध्वनि हमको प्रतिदिन सुनाई दे रही है, हम उनसे वंचित रहें। आपको चाहिए और यह आपके अधिकार में है कि आप अपने आहार में यथारुचि स्वादु फलों का चुनाव करें और यथेच्छ ३-४ प्रकार के शाकों का उपयोग करें। शाकों में आप लीमू का रस और जैतून का तेल भी मिला लेवें। यदि आपका मन वश में नहीं है तो आप उनमें थोड़ा लवण भी मिला सकते हैं, किन्तु स्मरण रहे कि प्राकृतिक लवण की कुछ भी आवश्यकता हमारी नाड़ियों को नहीं है। जैतून-तैल रुचिकर न हो तो अखरोट गिरी का उपयोग प्रसन्नता पूर्वक कीजिये। प्रत्येक पुरुष की रुचि आहार के चुनाव के लिए पूरी कसौटी है। प्रकृति ने इतने विविध प्रकार के फल तथा शाक उत्पन्न किये हैं। कि उनसे आपकी यथेच्छ तृप्ति हो सकती है।

विचार सफलताकी सीढ़ी हैं। हमको अपने पुराने अभ्यास बदलने होंगे और अपने लाभ के लिए नित नये उपाय सोच कर निकालने पड़ेंगे। सफलता तो हमारी अपनी वस्तु है, उसे कोई हमसे छीन-झपट कर नहीं ले सकता। केवल विश्वास, धैर्य और निश्चय (दृढ़ संकल्पशक्ति) की आवश्यकता है। यदि आप प्राकृतिक आहार ग्रहण करें तो आपको असफलता का मुख कभी न देखना पड़े। प्राकृत आहार सब परिज्ञात रोगों का भयानक शत्रु है। सहिष्णुता और संयम सीखिये तथा सरलता को स्वीकार कीजिये। किवाड़ में लगी कील के समान जड़ न बनिये, किन्तु सजग और चेतन रहिये। मनुष्य के हृदय में आशा के बसंत का आविर्भाव सदा होता रहता है।

टिप्पणी १-भोजन के साथ कोई पेय वा तरल पदार्थ कभी न पियो। रसीले फलों तथा शाकों के सलादों में पर्याप्त पेय पदार्थ वा तरल द्रव्य विद्यमान हैं, केवल दो आहारों के मध्य में ही जल पीना चाहिए।

टिप्पणी २—शूकधान्यों तथा शिम्बीधान्यों को छिलके सहित पकाकर खाना चाहिये।

टिप्पणी ३--मध्याह्न और सायं के आहार यथारुचि अदल-बदल सकते हैं अर्थात् एक का स्थान दूसरे को दे सकते हैं।

टिप्पणी ४—श्वेतसारमय आहारों को सूखा खाना चाहिए, जिससे उनको भले प्रकार चबाया जा सके और उनमें लालारस

प्रचुर मात्रा में मिल सके। उनको दिन रात के आहार में केवल एक बार भोजन के अंत में खाइये। श्वेतसारी पदार्थों से कार्बन उत्पन्न होता है। अखरोट की गिरी में जो तेल है, वह इन पदार्थों से दुगुना बल देता है।

शाकों का सलाद

निम्नलिखित शाकों में से कोई तीन मिलाकर सलाद बना सकते हैं :— काहू (Lettuce), कुर्स (Cellary), जो कोमल डंठलों के रूप में प्रयुक्त है और लाल अच्छा समझा जाता है, टमाटर (टमैटो), खीरा (Cocumber), जल हालम (Water cress), गाजर (Carrot) राई के पत्ते (Mustard leaves) मूली (Reddish), शलजम (Turnip), बंद गोभी (कर्मकल्ला=Cabbage), पालक (Spinach), प्लांडु (प्याज़=Onions) धनियां (Coriander) के पत्ते, पोदीनेके पत्ते (Millet leaves) संतरे (Orange), लशुन (Garlic) तथा चुकन्दर (Beet-root) उक्त सलाद में लीमू का रस, मधु, जैतून तैल, अखरोट का तैल, ताजा मलाई, स्वाद के लिए कुछ नमक, इनमें से कुछ को संयुक्त करके वा कोई एक मिला सकते हैं। सलाद में सिरका कभी न डालिये।

टिप्पणी १—१ भाग मधु जैतून तैल और एकाध लीमूका रस २ भाग का मिश्रण भूख को बढ़ाता है। संतरों और टमाटरों का भी सुन्दर सलाद बनता है। कच्ची गाजर, काहू पत्र, टमैटो तथा चुकन्दर का सलाद यदि छिलके सहित भूभल में भुने हुए

आलुओं के साथ मिला कर बनाया जाय तो यह देवताओं का आहार है।

लीमू का रस तेल की चिकनाहट को नष्ट कर देता है।

चटनी

श्वासनलिका-शोथ (ब्रान्काइटिस) श्वास तथा क्षय के रोगियों को प्लांडु, लशुन, पोदीने तथा धनिये के पत्तों की चटनी लीमू रस और नमक के साथ मिलाकर खिलाई जाय तो बड़ी लाभदायक है। इस में नमक न मिला कर शहद डालना अच्छा है। बन्धुओ ! इन आहारों को जंगलियों वा ग्रामीणों का आहार न समझिये, ये हमारे प्राकृतिक आहार हैं। हमसे तो वे जन्तु अच्छे हैं जो अप्राकृतिक भोजनों की गंध तक नहीं लेते।

दलिया (Porridge)

किसी फलके रस और दाखों का मिश्रण दूध डाल कर बनाया जाय और उसमें मधु मिलाया जाय। भारतीयों का मुनक्का मिला कर बनाया हुआ चोकर के सहित गेहूं का दलिया इसका अच्छा स्थानापन्न है। दूध में किसी फल का गूदा मिला कर खाना सुन्दर आहार है।

संयोगवर्जित आहार

१- ताज़े रसीले फलों के साथ रोटी।

२- ताज़े रसीले फलों के साथ शूकधान्य (Cereals)

३- एक ही साथ में संतरे और सेब।

४- मक्खन के साथ अखरोट आदि की गिरियां।

५- जैतून तैल के साथ अखरोट आदि की गिरियां।

६- दूध और रांधे हुए शाक।

७- फल और शाक।

८- चिकनाई के साथ फल।

९- मधु या मक्खन के साथ रोटी।

टिप्पणी— मांस-मछली या पक्षी-मांस के स्थान में मक्खन गिरियां या सोयाबीन का प्रयोग किया जाय तो यह प्राकृतिक आहार है।

संयोग-विहित आहार

१- दूध और फल, दूध और गिरियां, संतरा और केला, सेब और केला।

२- समग्र गेहूं (चोकर सहित = Whole meal bread) की रोटी के साथ दूध।

३- चोकर वाली रोटी के साथ दूध का तोड़ (Whey)

४- छिलके की दाल या अपने रस में पकाये शाकों के साथ चोकर की रोटी।

५- छिलके की दाल या दही के साथ बिन-पालिश के चावलों का भात।

६- दूध और शहद या मक्खन और शहद मिला कर।

टिप्पणी १—गिरियां मांस अंडे और मक्खन का काम देती हैं।

टिप्पणी २—सलाद के साथ गिरियां और दाखें खाई जा सकती हैं।

टिप्पणी ३—फलों के साथ गिरियां और दाखें खाई जा सकती हैं।

टिप्पणी ४-फलोंके साथ गाजर और टमाटर खा सकते हैं।

आपके भोजन का मुख्य आधार ताज़े फल, कच्चे शाकों का सलाद और गिरियां होना चाहिए। यदि आप इस आहार को अपना एक मात्र अवलम्ब बनायंगे तो आप आनन्द से भरपूर रहेंगे। सत्य बहुत कम प्रिय होता है, किन्तु उसकी अवहेलना कभी न करनी चाहिए।

सात्विक फल पेय

यह बड़ा स्वादु पेय है और योरुप तथा अमेरिका वासी इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। इसके बनाने की विधि निम्नलिखित है और इसे दूध के साथ प्रातराश के रूप में पीना चाहिए :-

१ से दो छटांक तक (२ से ४ औंस तक) भले प्रकार धुली हुई मोटी-मोटी दाखों को चीनी, कासी, शीशे या मिट्टी के पात्र में डाल कर उसमें दो चमचे (८ माशा) जल मिलादो और १ कागजी लीमू रस भी निचोड़ दो। यदि यह पेय किसी जलोदर (Dropsy), भगंदर (Fistula, या शिरातिविस्तर (Varicose veins affecter with vertix=Permanent abdominal dilation of veins or vessels रोगों में शिराएँ और धमनियां सदा के लिए असाधारण रूप से फैल जाती हैं) के रोगियों को देना हो तो उसमें केवल आधे नींबू का रस मिलाना चाहिए और जल बिल्कुल न डाला जाय। नींबू न मिले तो ५

दाने सूखे आलू बुखारे का पानी मिलाओ। तत्पश्चात् उसको श्वेत वस्त्रखण्ड से ढक दो और सारी रात धरा रहने दो। प्रातःकाल उठ कर मुंह-हाथ धोकर स्नान करके इसका रस एक-दो चमचे, जो दबा कर निचोड़ने से निकलता है पीजिये। फिर दाख का एक २ दाना उठा कर खाते जाइये। जब सब दांखें खा चुकें तो भी यदि भूख बनी रहे तो बिना मीठे का ताज़ा दूध पी सकते हैं, अन्यथा दाख ही पर्याप्त है। निर्धन जनों के लिए सूखे आलू-बुखारे या झड़बरी के बेर मुनक्कों के स्थान में काम दे सकते हैं और उनको भी इसी प्रकार रात भर भिगो कर रखना चाहिये।

टिप्पणी—मुनक्का अत्युत्तम फल है। यह रस मद्य से अधिक सुस्वादु और गुणदायक है।

ठंडियाई का योग

यह ग्रीष्मऋतु में अत्युपयोगी है और प्यास को शांत रखता है। १ छटांक सूखी दाख या किशमिश को भले प्रकार जल से धो साफ कर किसी स्वच्छ पात्र में रख कर इसमें ५ आलू-बुखारे धोकर और ५-७ बादाम मिला दो फिर उसमें इतना जल डालो कि वह उसके ऊपर तक तैरता रहे। पात्र को सारी रात किसी बारीक मलमल वस्त्र से ढक कर रखो। प्रातः सोते उठ कर शौच स्नान से निवृत्त होकर उसे कूंडी में सोंटे से रगड़ो और यथेच्छ पानी डाल कर बिना मीठे के तथा बिना छाने पी जाओ। किन्तु ध्यान रहे कि उसे घूंट २ करके पीना चाहिए तत्पश्चात् मध्याह्न तक कुछ न खाओ। इस पेय से नवरक्त उत्पन्न होता है

और आयु बढ़ती है। इसमें दूध बिल्कुल न मिलाना चाहिए। इसे सायं ३-४ बजे भी पी सकते हैं किन्तु इसके लिए दाख या किशमिश प्रातः से ही भिगो रखना चाहिए।

शिशुओं का आहार

आज का शिशु भावी मनुष्य का पिता है अर्थात् जो आज शिशु है, वही प्रौढ़ता को प्राप्त होकर मनुष्य बन जायगा। संप्रति शिशुओं के पालन-पोषण की प्रचलित रीति अतिनिकृष्ट तथा सदोष है। अत्यन्त रंधे आहार और चिकने खाद्य पदार्थ शिशु के विकास में बाधक होते हैं। शैशवकाल में ही माताओं तथा धात्रियों के अज्ञान के कारण प्रायः समस्त रोगों के बीज बोये जाते हैं। यदि शिशु को जन्म के पश्चात् प्रारम्भ से ही प्राकृतिक आहार दिया जाय तो भावी संतति स्वस्थ एवं नीरोग बने और वह आकाश के तारों के समान जग में जगमगाए।

टिप्पणी—माता वा धात्री को अपने स्तनंधय (दुध मुंहे बच्चे के संकेत और पुकार मात्र पर, जभी वह रोने लगे तब ही उसके मुह में स्तन न देना चाहिये। स्तनंधयों के दुग्धपान का यह नियम होना चाहिये कि उनको दिन में ४-४ घंटे के अंतर से स्तन पिलाया जाय और रात में बिल्कुल दूध न पिलायें। रात को जब शिशु रोये-चिल्लाये तो उसे १ चमचा पानी पिला दीजिये। स्तनंधय का प्राकृतिक आहार स्तन से पिलाया हुआ माता का दुग्ध ही है। शिशु के जन्म के पश्चात् प्रथम तीन दिन तक माता के स्तनों से कोलोस्ट्रम (Colostrum) नामक

द्रव्य बहता रहता है, जो स्तनंधय को उग्र विरेचन का काम देता है और उसकी मेकोनियम (Meconium) द्रव्य से भाराक्रांत आंतों को शुद्ध कर देता है। वास्तविक शुद्ध दूध तीसरे दिन स्तन से निकलता है साधारणतः एक ही स्तन पर्याप्त है। अति-स्तनपान से शिशु को वमन, अतिसार और हिचकियों का प्रकोप होता है। माता को बच्चे को कम से कम ६ मास, उसके दांत निकलने तक दूध पिलाना चाहिये। ६ से १८ मास तक शिशु का आहार गौ, बकरी का दूध या अंगूर, संतरे जैसे ताज़े फलों का रस होना चाहिये। श्वेतसारीय आहार उसको दूसरे वर्ष के अंत में तब दीजिये जब उसको आहार का चबाना सिखाया जा चुके। चबाना सिखाने के लिए प्रथम उसे एक कड़ी रोटी का टुकड़ा दीजिये और फल और शाकोंके सलाद भी प्रारम्भ कीजिये। ५ वर्ष की आयु तक दिन में ४ बार आहार देते रहिये। उसके पश्चात् दिन में ३ बार कर दिया जाय।

यदि माताएं गर्भावस्था में केवल प्राकृतिक आहार पर रहें, तो उनका प्रसव अवश्यमेव बिना कष्ट के हो जाय। शिशु की रुग्णदशामें उसका आहार बंद कर दीजिये और यदि वह न खाना चाहे तो उसे विवश न कीजिये। किंतु उसे दो दिन से अधिक निराहार न रखना चाहिये। इस अवधिमें जब तक रोग बिल्कुल दूर न हो जाय, जल या संतरे का रस ही उसका एकमात्र आहार रहना चाहिये। संतरे का रस न मिले तो दाख सूखे आलू-बुखारे या सूखी खूबानियां रात भर जल में भिगो कर उनका रस

दीजिये। तुरंत आवश्यकता आ पड़े तो इन शुष्क फलों पर खौलता जल डाल कर आर्द्र कर लीजिये और उसी जल में कुछ घंटे भिगो कर रस तैयार कीजिये। बच्चों की स्थूलता रोग का चिन्ह है। दुधमुंहे बच्चे को प्रथम दो मास तक २०-२२ घंटे की नींद अवश्य मिलनी चाहिये। और ६ मास तक उसे ऊपरको उछालना न चाहिये। शिशु की ताड़ना न करोगे तो वह अच्छा बनेगा, यह सिद्धांतरत्न है (Spare the rod and save the child, is a golden rule.)

स्वच्छ ताज़ा वायु, समुचित श्वास, घर से बाहर मैदान या रेत पर व्यायाम का प्राचुर्य तथा धूप और जल का स्नान स्वस्थ शिशुओं की वृद्धि एवं विकास के लिए उनके विशुद्ध जीवन के सर्वसम्मत नियम हैं। आज कल उपचक्षुधारी (चश्मे वाले), मुंह में श्वास लेने वाले; पीले दुबले पतले, प्रतिश्यायग्रस्त, चिड़-चिड़े, झगड़ालू वा उग्रस्वभाव के, जो अधिकांश शिशु दीख पड़ते हैं; उसका कारण अप्राकृतिक आहार और अध्यशन ही है। शिशुओं को श्वेतशर्करामिश्रित मिठाइयां खिलाने का लाड़ न कीजिये। उनके रोग का निवारण केवल उनके देह में संचार करने वाले रक्त द्वारा ही हो सकता है। रोग केवल देह में एकत्रित दूषित द्रव्यों का परिणाम है। शिक्षित पुरुषों को चाहिये कि सब बातों को छोड़ कर अपने शिशुओं के आहार में, पूर्ण-पोषण तथा स्वास्थ्य साधन का ध्यान रखें। मानव देह में रोगों के प्रादुर्भाव से पूर्व रोग प्रतिरोधक सामर्थ्य उसी प्रकार विद्यमान

है, जैसे उसमें रोगी होने पर रोगों से अच्छा हो जाने की शक्ति वर्तमान है। एकमात्र ज्ञान ही चिकित्सा का विश्वसनीय साधन है। शरीर में रोग का आविर्भाव शरीर का स्वास्थ्य प्राप्ति का प्रयत्नमात्र है, यह सुधारात्मक कार्य है। आप अपने गृहों को आनंद प्रेम एवं प्रसन्नता से परिपूर्ण स्वर्ग बनाइये। प्रकृति ने पूर्व से ही सब प्राणियों के लिए आहार का प्रबन्ध कर रखा है। जो आहार रांधे बिना नहीं खाये जा सकते, वे शिशुओं तथा मनुष्य के खाने योग्य नहीं हैं। यह संदिग्ध है कि बच्चे आहार के विषय में किन्हीं पदार्थों की रुचि वा अरुचि लेकर इस संसार में जन्म लेते हैं। शिशु तो वानराकृति और वानरवृत्ति जन्तु हैं (Children are monkey-see and monkey-do creatures)।

संसार को मनोवृत्ति के परिवर्तन की आवश्यकता है। मनुष्यों में अशुद्ध भावनाओं का उन्मूलन करके विशुद्ध भावनाओं के संचार की आवश्यकता है, तब ही भावी संततियों का पालन-पोषण प्राकृतिक आहार से हो सकेगा और संसार स्वर्गधाम बन सकेगा।

चिकित्सा (Treatment)

दुष्टता (बुराई) को कभी प्रवेश न पाने दो और यदि वह पूर्व से ही प्रवेश कर चुकी है तो उसे उसी स्थान पर कुचल डालो, आगे न बढ़ने दो। सच्चे वैद्य का कर्तव्य है कि वह मनुष्य के कष्टों को किसी न किसी तरह कम करे। 'वेदनायाश्च निग्रहः,

एतद्विधस्य वैद्यत्वम्" संस्कृतमें आयुर्वेदकी उक्ति पुरानी चली आती है। वैद्यका सर्वोपरि कर्तव्य रोगी की चिकित्सा करना है, रोग की नहीं। वैद्य अपनी विद्या के बल पर वैद्य बनता है, किसी महाविद्यालय या संस्था का मानपत्र अथवा ख्याति उसे वैद्य नहीं बनाती। रोग विकार (Degeneration) का ही नामांतर है। जब तक हमारे देह में दोषों वा विकृत पदार्थों का संग्रह न हो, तब तक किसी रोग का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। इन विकारों का देह से बाहर निकास वा शमन ही वास्तविक रोग निवारण है। हमको स्वास्थ्य सम्पादन में पूर्व से ही तत्पर रहना चाहिए। वृद्धावस्था के प्रतिरोधार्थ बाल्यावस्था से ही तैयारी करनी चाहिए। आयु के परिमाण के नियत होने का विचार कल्पनामात्र है। आप अपने आयु के वर्षों की उपेक्षा (कुछ विचार न) करें तो वर्ष भी आपकी उपेक्षा करेंगे। वर्षों के मान का आपकी आयु की अवधि के विषय में कोई महत्व न रह जायगा। सच पूछिये तो वृद्धावस्था भी एक रोग है और अनिवार्य नहीं है, उसको दूर रखा जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों में यह विचार अधिकाधिक प्रचार पा रहा है कि रोग का पूर्व से प्रतिरोध ही सर्वोत्तम चिकित्सा है (Prevention is the best cure)। हमारा देह गर्भाधान समय से ही स्वयं-समुन्नतिशील (Self-progressive) तथा स्वयं-चिकित्सक (Self curing) यंत्र है। इस यंत्र में उचित इंधन डालते रहने की आवश्यकता है और उसके स्वच्छ करने को किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं है। यीशु प्रभु की पवित्र धर्माज्ञा (Holy commandment) "जाओ और फिर

पाप न करो" में अब भी उतना ही बल है जितना उसके उच्चारण समय १६ शताब्दी पूर्व था।

नवप्रादुर्भूत उग्र आकस्मिक-रोगों (Acute diseases) में प्रथम पग पूर्ण विश्राम का अवलम्बन है। स्वच्छ ताज़ा वायु का सेवन कीजिये और जब तक देह में कष्ट विद्यमान है, देह में कोई भोजन न जाने दीजिये। यही प्राकृतिक चिकित्सा का मूल-मन्त्र है। ज्वरमें आहार ग्रहण ज्वरको आहार देना है। किसी भी रोग में कोई पोषक आहार कदापि न खायं। यह शिक्षा सदैव पालन करनी चाहिए। बद्धकोष्ठ (जो प्राय: प्रत्येक रोग में बना रहता है) हो तो अपने अंत्रों (Bowels) की ओर तुरन्त ध्यान दीजिये। उनको दो २ घंटेके पीछे पर्याप्त तप्त जल, घूंट २ पीकर, तुरन्त स्वच्छ कर डालिये। यदि २४ घण्टे तक अध: शौच न हो तो तुरन्त बृहदंत्र प्रक्षालन (वस्तिकर्म) का प्रयोग कीजिये। ग्रामों में वस्तियन्त्र न मिले तो यह प्रयोग कीजिये :—

संतरे, लीमू या दोनों का रस २ और १ के अनुपात से मिलाकर (या संतरा, लीमू, दाख या सूखे आलूबुखारों को रात भर जल में भिगोकर) यथारुचि पीजिये। प्रथम दिन तो सादा शीतल या उष्ण जल पीजिये और रोग के शेष दिनों में ऊपर के फलों में से एक का रस पीना ही पर्याप्त है। फलों का रस भी न मिल सके तो बिना मीठे का कच्चा दूध पी सकते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि यदि आपके देह का तापमान नियतमात्रा से कुछ भी बढ़ा हुआ हो तो दूध कदापि न पीजिये। मेरे अनुभव के

अनुसार सभी सावधि-ज्वर, शीतला आदि प्रारम्भ में आहार ग्रहण से भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। कभी २ दारुण बद्ध-कोष्ठ में सनाय वाले पूर्ववर्णित चूर्ण की १।। माशा मात्रा तप्त जल के साथ खा ली जाय तो उससे कोष्ठ शुद्ध हो जाता है।

देह में पीड़ा के स्थान पर तप्त जल से आर्द्रवस्त्र वेष्टन (Hot compress) और रक्तस्राव होने पर शीतलजल वेष्टन (Cold compress) बहुत उपयोगी तथा लाभदायक होते हैं।

रोग के चले जाने पर निर्बलावस्था में शाकों के सलाद के साथ गूदे वाले फलों का आहार करते रहना चाहिए। श्वेतसारमय आहार पूर्ण रोग-निवृत्ति पर ही ठीक है। उग्र रोगों में तैल और अखरोट आदि की गिरी भी सर्वथा वर्जित है।

जीर्णरोग

जीर्णरोगों में प्रथम ३ वा अधिक दिनों का पूर्ण उपवास कीजिये। इस अवधि में केवल जल पीजिये। और प्रतिदिन प्रातः या रात को सोते समय बृहदंत्र (मलाशय) में संचित मल के शोधनार्थ वस्तिकर्म कीजिये। उपवास के चौथे दिन निम्नलिखित फलों में से किसी एक का रस शुद्ध मधुके साथ २४ घण्टे में ४ बार पीजिये। बिना उबाला और बिना मीठेका दूध फलोंके रसके साथ या अकेला घूंट २ कर पीना भी लाभदायक है। १५ दिन तो यही क्रम चलता है; इसके पीछे फिर १ दिन का उपवास कीजिये और शेष १४ दिन ऊपर की विधि के अनुसार दूध के साथ फलों का रस पीते रहिये।

इन ३० दिनों में आपका स्वास्थ्य पर्याप्त समुन्नत प्रतीत होगा और यदि आगे भी इस क्रम का अवलम्बन किया जाय (१ दिन जल पर रह कर पूर्ण उपवास और शेष १४ दिन फलाहार), तो अब तक परिज्ञात प्रत्येक रोग का उन्मूलन हो सकता है। यदि रोग की पुनरावृत्ति से बचना चाहें और सानन्द दीर्घ जीवन की अभिलाषा हो तो 'साधारण आहार' के अध्याय में दिये हुए आदेशों का पालन दृढ़ता पूर्वक कीजिये। श्वेतसारमय आहार पूर्णरोग-निवृत्ति पर ही और दिनमें केवल एक बार कीजिये। प्राकृतिक आहार के लाभ असीम हैं। आप उस अपव्यय का तनिक ध्यान तो कीजिये जो दुष्पच भोजनों के भक्षण से होता है। यदि आप उसका विचार करें तो उसको आप अति भयंकर पांयगे। जब मनुष्य को यह ज्ञात हो जाय कि देह का स्वास्थ्य, मस्तिष्क की निर्मलता तथा नेत्रों की ज्योति बनाये रखने के लिए कितने थोड़े धन की आवश्यकता है तो परमात्मा उस ज्ञान के कार्य में शीघ्र परिणति के लिए अविलम्ब सहाय प्रदान करता है। स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिए किसी विद्वान् विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं है। आज कल के डाक्टर तथा वैद्य-नामधारी कुचि-कित्सक तो यम के दूत हैं, जिनको आहार-शास्त्र की वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं है। वे स्वयं पथभ्रष्ट हैं और उनका अपना आहार अप्राकृतिक तथा तामसिक है। यह तो सबको ज्ञात है कि जब कोई डाक्टर स्वयं रोगी होता है तो वह दूसरोंसे चिकित्सा कराता है। उनका अपना ज्ञान उनकी कुछ भी सहायता नहीं

करता यह बड़ी विलक्षण बात है और इससे सिद्ध होता है कि आजकल का औषध शास्त्र न तो परिपूर्ण है और न ही वह स्रष्टा के नियमों का अनुसरण करता है, नहीं तो उसमें बताई औषधों से डाक्टर तथा वैद्य स्वयमेव अपनी अचूक चिकित्सा कर लिया करते। वस्तुतः औषधचिकित्सा ही भूलभुलैय्यां है। एक रोग के निवारणार्थ जो औषध दी जाती है, वह उसके लक्षणोंका दमन करके कोई और रोग खड़ा कर देती है। वैद्य का सर्वोपरि कर्तव्य विकारों का उन्मूलन करके स्वास्थ्य की पुनः स्थापना है, लक्षणों का विनाश वा दमन नहीं। आजकल के शस्त्रोपचारक किसी अंग का उच्छेद तो कर देते हैं, किन्तु वे उसकी पुनारचना नहीं कर सकते। जो राजनीतिज्ञ किसी गहन समस्या का हल करने के लिये दो नौकाओं में पांव रखते हैं—(द्विधा में रहते हैं) वे कभी सफल नहीं हो सकते। ऐसे ही जो वैद्य प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्पादन के नियमों का पालन न कराकर लक्षणचिकित्सा की भूलभुलैयों में फंसे रहते हैं, उनको भी अपने रोगियोंको वास्तविक स्वास्थ्यप्रदान में सफलता नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए अपना चिकित्सक आप बनना चाहिए और अपनी चिकित्सा में किसी का मुखापेक्षी न होना चाहिए। जो मनुष्य भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के ज्ञान का अभिलाषी है, वह सुगमता से उनको जान सकता है। यह उसके अपने बलबूते की बात है और इसमें किसी दूसरे की सहायता अपेक्षित नहीं है। औषधों की चिकित्सा तथा सेवनविधि में लगातार जो परिवर्तन होते रहते हैं, वे उनकी विफलता का पुष्ट प्रमाण हैं। हम प्रकृति

का अंग हैं और उससे पृथक् नहीं रह सकते। अब तक शरीर-पोषण के विषय में जनता घोर प्रमाद में ग्रस्त रही है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में आहारशास्त्र की कोई गद्दी (Chair) विरल ही पाई जायगी। जिस प्रकार ईन्धन के बिना ईंट नहीं पक सकती, उसी प्रकार प्राकृतिक आहार के बिना स्वास्थ्य भी प्राप्त नहीं हो सकता। प्राकृतिक आहार द्वारा चिकित्सा में कभी विफलता नहीं होती। असाध्य कहे जाने वाले रोग भी इससे चले जाते हैं तथा औषधचिकित्सा की भांति इसमें अपव्यय भी नहीं होता। प्राकृतिक चिकित्सा से आनुवंशिक रोग तक नष्ट हो जाते हैं। यदि आपके वंश के बहुत से पुरुष किसी एक रोग का लक्ष्य बन चुके हैं तो यह आवश्यक नहीं कि आप भी उसी पथ के पथिक बनें। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा आप इस दुर्भाग्य से सर्वथा मुक्ति पा सकते हैं। इस मिथ्याविश्वास वा हेत्वाभास को अपने मन से निकाल डालिये कि पूर्वजों के रोग संतति को भी मृत्युमुख में ले जांयगे। आप अभी से अपने रहन सहन तथा परिस्थिति में परिवर्तन कीजिये। आपके सदोष जीवन-यापन तथा मिथ्याहार-विहार के कारण ही आपको रोगोन्मूलन में सफलता नहीं मिली है, यद्यपि आप उनकी चिकित्सा प्रचलित प्रणालियोंके अनुसार कराते रहे हैं। अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लीजिये कि आपका रोग साध्य है और वह जा रहा है। विश्वास-पर्वत को भी हिला देता है, विश्वास सबसे बड़ा वैद्य है। यदि आप किसी वस्तु की प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर लेवें तो वह अवश्य आपको मिलेगी। आपको रोग यद्यपि बहुत समय से चला आ

रहा है और सम्भव है कि उसके जाने में पर्याप्त समय लगे, किंतु वह चला अवश्य जायगा। यह ध्रुव निश्चय है। भ्रम के गोरख-धंधे में न पड़े रहिये। चिकित्सा अधिकांश श्रद्धा एवं विश्वास का विषय है। आपमें स्वास्थ्यलाभ का उत्साह होना चाहिए। कभी न भूलिये कि यदि आप अच्छा होना चाहते हैं तो आप अवश्य अच्छे हो सकते हैं।

प्राकृतिक आहार संसार की सारी औषधोंको मात कर देता है। उसका प्रभाव सब औषधों से बढ़ कर है। निरर्थक औषध रूपी चट्टानों से टकराकर अपना सर्वनाश न कीजिये। जनता के भग्नस्वास्थ्य की यह मांग है कि स्वास्थ्यसाधन का तात्कालिक उपाय उनके द्वार पर उपस्थित रहे। इसके लिये उनको डाक्टरों और वैद्यों के द्वारपर न भटकना पड़े। प्राकृतिक चिकित्सा के ३ गुण सरलता, संयम और भोजन का भले प्रकार पूर्ण चर्वण ग्राह्य हैं। आहार ही मनुष्य के देह का आधार है। यदि आप शाकों और फलों का प्राकृतिक आहार करते रहेंगे तो आपको वृद्धावस्था न सतायेगी, इस सरल सिद्धांत पर आप सदा दृढ़ रहिये। यदि आपका मनोबल पर्याप्त दृढ़ है तो आपके जीवन में कोई बात भी अलभ्य नहीं है। उसकी प्राप्ति का कोई न कोई मार्ग मिल ही जायगा। यदि आपका रोग मिथ्याहार के कारण है तो इस कारण को हटाकर प्राकृतिकाहार का अभ्यास डालिये। यदि आपकी मांसपेशियां व्यायाम के अभाव से निर्बल पड़ गई हैं तो नित्य प्रति कुछ व्यायामों के अभ्यास करके उन्हें बलवान्

बनाइये ' अपने वर्तमान रहन सहन और आहार विहार को बदलिये। आप विधायक स्वीकार को धारण कीजिये, निराकारक निषेध को नहीं। स्वास्थ्य का संग्रह कीजिये, रोग का नहीं। रोग का जितना कारण अज्ञानजन्य मिथ्याहार है. उतना और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। स्वास्थ्य और रोग परस्पर विरोधी शक्तियां हैं। यदि आप कोई काम करने में आजकल करते रहेंगे तो प्रत्येक आने वाला दिन आपके निश्चय को शिथिल करता रहेगा। इस लिए जो करना है। तत्काल कर डालिये, 'शुभस्य शीघ्रं' की कहावत को चरितार्थ कीजिये। आप असाधारण सुन्दर स्वास्थ्य के आनन्द-सम्पन्न स्वामी बनिये। स्वास्थ्य के धनी बनिये यह आपकी अतुल सम्पत्ति है और उसका मूल्य वह स्वय आप ही हैं। उद्वेजक (उचाट करने वाली) पुनरुक्ति का दोषी होकर भी मैं यह निवेदन पुनः २ सानुरोध कर रहा हूं कि प्राकृतिक आहार के तुल्य और कोई वरदान नहीं है। 'सफलता का रहस्य कर्म में ही निहित है' और संसार का प्रभुत्व उसी मनुष्य का भागधेय है, जो अपने सिद्धान्त को धैर्य के साथ कार्य में परिणत कर सकता है। अब समय है कि आप दृढ़ उत्साह से अपनी कमर बांधलें और अविलम्ब प्रकृति के पथ पर चलने का दृढ़ निश्चय कर लेवें।

Opportunity has hair in front behind she is bald;
If you sieze her by forelock, you may find it a lord;
But if through carelessness, suffered to escape.
Not Jupiter himself, can even catch her nape.

उक्त अंग्रेजीके पद्य अनुवादककृत संस्कृतमें रूपान्तरित पद्य निम्नलिखित हैं :—

अवसरमयी बाला, अग्रालकैरलंकृता ।
शिरसः पृष्ठभागेषु, खल्वाटैषाभिधीयते ॥१॥
अग्रालकैगृ हीता चेह, सौभाग्यं वो ध्रुवं भवेत् ।
प्रमादाद्विद्रुतामिन्द्रो, वशीकर्तुं न पारयेत् ॥२॥

अवसर रूपी महिला की अलकायें सिर पर अगली ओर हैं और पिछली ओर से वह गंजी है। यदि आप उसकी अगली अलकाओं को पकड़ लेंगे तो आप निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं। अर्थात् आप समय पर ही अपना काम निकाल कर अवश्य सफल-मनोरथ होंगे। किंतु प्रमादवश यदि आपने इस महिला को भाग कर निकल जाने दिया तो वह इन्द्र के भी वश के बाहर हो जायगी।

इसी आशय की मिलती जुलती एक सूक्ति श्रीभर्तृहरि-कृत 'वैराग्यशतक' में भी है जो निम्नलिखित है :—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं, यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेंद्रियशक्तिरप्रतिहता, यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा, कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपखननं, प्रत्युद्यमः कीदृशः ।

अर्थ—जब तक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जब तक बुढ़ापा नहीं आया है, जब तक इन्द्रियों की शांति बनी हुई है, जब तक आयु का क्षय होकर मृत्यु न आये, तब तक विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि वह अपने कल्याण के लिए भारी उद्योग

करता रहे। घर में आग लग जाने पर कुंआं खोदने का परिश्रम कुछ भी काम न देगा।

ज्ञान तथा अनुभव-जनित दृढ़ विश्वास के साथ जीवन के विशुद्ध पथ पर चले जाइये। रोगों के आधार भूत कारणों का ज्ञान प्राप्त कीजिये और मिथ्याविश्वास तथा भय से छूटिये। अनैसर्गिक मृत्यु से न मरिये।

पीड़ित अङ्ग और रक्त-संघात

पीड़ित अंग को धूप में या आग के सामने खुला रखिये। तप्त जलपान और सेक भी करने चाहियें। जब तक पीड़ा बनी रहे, बराबर उपवास रखिये और फलों के रस पर भी निर्वाह कर सकते हैं। दुखते अंग को हाथ से मलने या श्रम (एक्ससर्साईज़) देने से वहां रक्त-सचार होने लगता है और वहां का विषैला द्रव्य हट जाता है।

अस्थिभंग और त्वग्घर्षण

(Injuries & Bruises)

स्थान से च्युत वा आघात पहुंचे हुए स्थान को यथावत् बैठाकर शीतल जल की गद्दी बांध दो। यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो वह भी शीतल जल की गद्दी से बंद हो जाता है। शीतजल में कागजी लीमू का रस मिलालें तो बहुत उपयोगी है। रोगी को विश्राम दीजिये और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का सावधानता-पूर्वक पूरा पालन कीजिये।

अर्बुद (फोड़ा) तथा क्षत

लीमू, नारंगी, अनन्नास, सेब, गाजर, प्याज़ में से एक के गूदे को कूट कर सूजन के स्थान पर पोलटिस के रूप में लगाओ और उस पर कोई पट्टी न बांधो। उसे वायु लगने दो। इस उपचार के बार-बार करने से फोड़ा-फुन्सी स्वयं फूट जायगा।

लीमूरस जैतून तैल को सममात्रा में मिलाकर सूजन की जगह पर लगायें तो सूजन जल्द पक कर उसमें की राद (पस) निकल जाती है। फोड़ों के लिए १ भाग लीमूरस और ३-४ भाग शीत या तप्त जल काम में लाइये। केवल संतरों के रस से, बिना जल मिलाये, भी धो सकते हैं। सूर्य किरणें भी क्षत को अच्छा कर देती हैं। यदि किसी कारण-वश सूर्य की किरणें न डाली जा सकें तो आग से भी यह काम निकल सकता है। पवन और प्रकाश में क्षतों को अच्छा करने की विशेष सामर्थ्य है। स्वच्छता, विकृत द्रव्यस्राव तथा फल शाकाहार के साथ विश्राम से प्रत्येक प्रकार के क्षत अच्छे हो जाते हैं। प्रतिदिन का स्नान या देह को स्पंज या मोटे वस्त्र से धोना कभी न छोड़ना चाहिये। शुद्ध मधु का लेप क्षतों के लिए बड़ा उपयोगी है, उससे तलवार तक के घाव अच्छे हो जाते हैं।

टिप्पणी—लीमू रस में ऐसा प्राकृतिक बहुमूल्य गुण है कि उससे सब प्रकार के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वह प्रथम श्रेणी का रक्तशोधक तथा जारण-प्रतिरोधक (डिसइन्फेक्टेण्ट) है।

खरोंच तथा अघात (Contusion)

पीड़ित स्थान पर लीमू का रस बिना पानी के लगा कर सूखने दो। कई बार ऐसा करो।

पिटिका, पादकिण, नापितज्वर (कंडूति)

(Ache, Corn, Barber's, Itches) इनमें उपयुक्तानुसार लीमू रस मलो या ३-४ भाग जल में लीमू रस मिला कर मलिये। प्राकृतिक आहार, बृहदंत्र प्रक्षालन और त्वचाका प्रतिदिन धोना भी अत्यावश्यक है।

दुष्टार्बुद (Boil) के चारों ओर लीमूरस लगा कर सुखाते रहिये और उपर्युक्त फलों के गूदे की पोलटिस भी बांधिये। प्राकृतिक आहार का दृढ़ता से पालन कीजिये।

सर्पवृश्चिकादि-दंशन

दंश के स्थान को कुछ लालारस से आर्द्र करके उस पर भले प्रकार खाने का लवण कुछ मिनट तक मलते रहिये। पलांडु या लशुनका गूदा भी पीसकर उसपर लगा सकते हैं, इससे लाभ होगा भिड़, मधुमक्खी के डंक तुरन्त दबा कर निकाल डालिये।

कुत्ते आदि का काटना

काटे पर बारी बारी से तप्त और शीत जल की गद्दियां रखते रहो और इसके पीछे तुरन्त शुद्ध लीमू रस लगा २ कर सुखाते रहो। पीने के लिए भी लीमूरस में बराबर शीतल जल मिला कर ३-३ घण्टे बाद पीते रहो। काटे पर लीमू के छिलके

लगाना भी उपयोगी है। कुत्ते के काटे पर प्लांडु का गूदा पीस कर बांधें तो उसका बहुत ही विषहारक प्रभाव होता है और भविष्य में भय की आशंका नहीं रहती।

पिचकारी चिकित्सा

लीमूरस को ३-४ भाग शीत या उष्णजल में मिला कर वा शुद्ध संतरा-रस देह के नासिका, मूत्र प्रणाली और योनि (Vagina) आदि आभ्यंतर स्थानों में आवश्यकतानुसार पिचकारी द्वारा प्रविष्ट करना चाहिये। अर्श के लिए बीच में उभरी और गंधकाक्त रबर के अग्रभाग (Vulcanite nozzle) सहित छोटी रबर की नली काम में लाइये। २॥ छटांक लीमूरस बराबर जल में मिलाकर गुदा में उक्त नली द्वारा प्रविष्ट कीजिये। इससे मूत्र खुल कर आता है और बद्धकोष्ठ भी दूर होता है। यह पिचकारी "दि प्योर बायो डिस्पेंसरी, डेरागाजीखां" से मिल सकती है।

नासिका-वेदना

१ औंस लीमूरस और १॥ छटांक (३ औंस) उष्ण जल मिला कर, गर्दन झुका कर, २-३ बून्द शनैः नाक में टपकाओ। पूर्व नाक के एक नथुने में और फिर दूसरे में डालो। इससे पुरानी श्लैष्मिक पीड़ायें दूर हो जाती हैं और बहुत उत्तम परिणाम निकलते हैं। यह पिचकारी भी उक्त डिस्पेंसरी में मिल सकती है।

शिरो-वेदना

प्रथम पूर्ण उपवास करो, प्रतिदिन वस्ति और स्नान भी

करते रहो। सिर दर्द होने पर ४ माशा लीमूरस में बराबर उष्ण जल डाल कर, २॥ छटांक नारंगी का रस या २ नारंगी और १ लीमू रस पियो। फल और शाकों का आहार करने से शिरः पीड़ा समूल नष्ट हो जायगी क्योंकि यह प्रायः आमाशय-विकार के कारण होती है।

वक्ष-दाह

तुरन्त उपवास करो या केवल शाक का आहार लो। पानी बिल्कुल न पियो, चाहे सारे दिन निर्जल रहना पड़े। वस्ति भी करते रहो। इसके पश्चात् दिन में २॥ छ० नारंगी का या २ नारंगी और १ लीमू का रस पियो। श्वेतसारीय आहार बिल्कुल बंद करदो। देह तथा बृहदंत्र को स्वच्छ रखने से एक-दो दिन में बिल्कुल अच्छे हो जाओगे।

सूर्याघात (Sunstroke)

रोगी को सुख से लिटादो और प्लांडु रस दो। २ लीमू का रस बराबर शीतल जल में या नारंगी तथा १ लीमू का रस थोड़ा थोड़ा पिलाते रहो। मूर्छा हो तो ४ माशा (१ चमचा) प्लांडु रस १५-१५ मिनट बाद देने से चेतना लाता है। प्लांडु रस सुंघाना भी मूर्च्छा में लाभप्रद है और ज्वर की उष्णता का भी नाशक है। रोगी को शीतल स्थान पर खुली वायु में ले जाइये। छाती पर ठंडे जल में भीगा वस्त्र कदापि न रखना चाहिये। सिर या छाती पर बर्फ रखना भी भयावह है। केवल उदर पर ठंडे जल में भीगा वस्त्र रखिये, इससे ज्वर जल्दी उतर जाता है।

कंठमाला

(कंठस्थ लसिकाग्रन्थि-प्रदाह = Scrowfula)

इस रोग में ग्रीवा की लसिका ग्रन्थियां फूल कर माला की भांति हो जाती हैं इस लिए इसे कंठमाला कहते हैं। यत: इसमें रोगी की ग्रीवा शूकर की गर्दन के समान मोटी हो जाती है, इस लिए अंग्रेजी में इसे 'स्क्राफूला' (लैटिन Scrowfula शूकरी) कहते हैं। यह उपाय शस्त्रोपचार से बचाता और अनुभूत है। नाक की नाली को स्वच्छ करने के लिए रबर की पिचकारी लो, फिर लीमूरस तिगुने स्वच्छ जल में मिलाकर पिचकारी द्वारा दोनों नथुनों में चढ़ाओ। कम से कम १ औंस पानी प्रत्येक नथुने में पहुंचाइये। यह उपचार दिन में २ बार सायं प्रात: करो।

पिचकारी न हो तो, हाथ की हथेली पर जल रख कर नाक के पास ले जाओ और वेग से ऊपर खींचो। इसके लिए केवल अभ्यास अपेक्षित है। प्रत्येक मनुष्य इसको स्वयं कर सकता है। इसकी विधि यह है :—दायें हाथ की हथेली में २ छटांक जल नाक के पास लाकर, बायें हाथ के अंगूठे से बायां नथुना बंद कर, दायें नथुने से वेग के साथ हथेली का पानी खींचो और मुंह के मार्ग से बाहर निकाल दो। इसी प्रकार दूसरे नथुने से भी जल खींचो। यह क्रिया भी सायं-प्रात: कीजिये। पानी में लीमूरस मिलाना विशेष लाभकारी है। बच्चों के लिए पिचकारी अवश्य अपेक्षित है।

पथ्य में १-२ दिन का उपवास करके केवल फलों का रस

दीजिये और आगे के लिए भी फल, शाक, दूध अखरोट का ही आहार कीजिये। श्वेतसारीय आहार सर्वथा निषिद्ध हैं। केला, आलू, सोयाबीन कभी २ ले सकते हैं। बाह्य तथा आभ्यन्तरस्नान (वस्तिकर्म) और खुली हवा का विशेष ध्यान रखिये। ग्रीवा और छाती पर लीमूरस बराबर जैतून तैल में मिला कर मलना भी लाभदायक है।

उपांत्र-प्रदाह (Appendicitis)

इस रोग में उदर में नाभि से दायीं ओर अकस्मात् पीड़ा होने लगती है। (इसी स्थान से उपांत्र का प्रारम्भ होता है।) यह पीड़ा असह्य होती है, यही इसका मुख्य लक्षण है। उपवास रखो। प्रथम वस्तिकर्म करो; जैतून, बादाम, एरंड या तिल का तेल १॥ २ छटांक तक तुरन्त पीलो। इस तेल में २ अंडों की पीतिमा तथा १ लीमूरस मिलालें तो अधिक लाभदायक है। यह तेल, रस आदि पीने से घृणा (मिचलाहट) हो तो उसे १॥ सेर उष्ण जल के साथ वस्ति द्वारा गुदा में ले जाओ। संतरा अंगूर, अनन्नास, या लीमूरस भी यथेच्छ ले सकते हैं। श्वेतसारीय पदार्थों से बचना चाहिये।

टिप्पणी—इस रोग में शस्त्रोपचार न कराना चाहिये।

व्याख्याताओं का कंठकष्ट

कई बार लीमू का रस कंठ में इधर-उधर टपकाओ और १-२ लीमू का रस उष्ण जल के साथ पियो भी। अनन्नास इसके लिए अत्युपयोगी है, उसको चूसिये।

अजीर्ण (Dyspepsia)

अजीर्ण में उपवास ही समुचित चिकित्सा है और आहार संयम ही सर्वोत्तम औषध है। स्मरण रहे कि पाचक औषधियां तथा उत्तेजक एवं मादक पेय थके घोड़े पर कोड़े का काम करते हैं। कोड़े की मार से ही चलने वाला कभी न कभी अवश्य काम बन्द कर देगा। निम्नलिखित नियमों का सदा पालन करते रहो:-

१- भोजन करते हुए सदा सीधे बैठो, झुक कर या मुड़ कर कभी न बैठो।

२- भोजन करते हुए बायां स्वर चलता रहे तो अच्छा है।

३- जो कुछ खाओ, चबा-चबा कर खाओ। भोजन का पूरा पूरा स्वाद लो। जब तक पहला ग्रास चबाया जाकर कंठ से न उतर जाय, तब तक दूसरा ग्रास मुंह में न ले जाओ ग्रास को बहुत देर तक दांतों की चक्की में पीसते रहने से उसमें लालारस (सेलिवा) पर्याप्त मात्रा में मिलता है, यह रस पाचनार्थ अतीव उपयोगी है।

४- कमर में कसी हुई पेटी बांध कर यकृत के कार्य में बाधा मत डालो।

५- जब देह अतिसार (डायरिया), प्रवाहिका (डिसेंट्री), तीव्र ज्वर, आमाशय-पीड़ा, वमन, शिर-पीड़ा, कंडु (Itch) आदि रोगों-द्वारा शुद्धिकार्य में लगा हो तो कोई आहार कदापि न करो।

६- विविध आहारों के अति सम्मिश्रण से सदा बचे रहो,

कई प्रकार के आहार यथासम्भव एक समय न खाओ। आहार में सदा सरलता होनी चाहिये, केवल २ प्रकारके फल और ३ प्रकार के शाक पर संतोष करो।

७- भोजन के समय जल न पीना चाहिये। २ घण्टे बाद पीना ठीक है।

८- आमाशय को अतिभोजन से ठसाठस न भरना चाहिये। कुछ भूख रहते हुए भोजन बन्द कर दो।

९- भोजन के समय प्रसन्नचित्तता पाचन में सहायता है। उस समय कम से कम एक अट्टहास बलकारी औषध है।

१०- भोजन से पूर्व और पश्चात् मुंह, हाथ और दांत भले प्रकार स्वच्छ कर लेने चाहियें।

११- किसी प्रकार के मिर्च-मसाले, चटनी, मुरब्बे शर्बत, आदि पेय और मादक द्रव्य कभी प्रयोग न कीजिये। वे पाचन-संस्थान को बिगाड़ने वाले और अनावश्यक हैं।

१२- फलाहार में गूदेदार फलों (जो शर्करा, लवण और जलका काम देते हैं) और गिरियों (जो अंडौज तथा स्नेहद्रव्य की स्थानापन्न हैं) का समावेश है। हमारे भोजन में धान्यों वा अन्नों की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि उनसे कार्बन उत्पन्न होती है जो सब रोगों का मूल है।

ज्वर (Fevers)

ज्वर कोई रोग नहीं, किन्तु स्वयं प्रकृति की प्रयुक्त चिकित्सा है। यह हमारे शरीर में संचित विकृत पदार्थों को जलाने के

लिए प्रकृति का उपायमात्र है। ज्वर में उपवास कीजिये और जल के अतिरिक्त और कुछ न लीजिये। जब तक तापमान बना रहे, शीत या उष्ण जल में लीमूरस डालकर प्रतिदिन ३-४ बार पीजिये इससे देह के विष शीघ्र बाहर निकल जाते हैं। सतत ज्वर में इस उपाय से रोग की अवधि बहुत कुछ घट जाती है, अतः इसे श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिये। बद्धकोष्ठ हो तो उष्ण जल से बृहदंत्र-प्रक्षालन लाभदायक है। त्वचा की ओर भी ध्यान दीजिये और निश्शंक आर्द्रवस्त्र-वेष्टन का प्रयोग कीजिये। यदि कोई उपवास न कर सके तो उसे केवल ताज़े फलों का आहार कराइये फलों का केवल रस ही दिया जाय तो अच्छा है। लीमूरस न मिले तो संतरे का रस भी गुणप्रद और स्वास्थ्यकर है। उद्वेग-रहित पूर्ण विश्राम अत्यन्त आवश्यक है।

टिप्पणी—तीव्र ज्वर के रोगी को नंगा करके खुली वायु में सुलाना चाहिये। ज्यों ही तापमान गिर जाय और शीत लगने लगे, उसे कम्बल उढ़ा दीजिये, पर नाक-मुंह खुले रहें। इससे पर्याप्त स्वेद आकर ज्वर उतर जायगा। किन्तु ध्यान रहे कि रोगी वायु में कांपने न लगे। यदि फलालैन का टुकड़ा शीतल जल में भिगो कर रोगी के पेडू पर रखा जाय तो भी तापमान घट जाता है। दूध निःसन्देह पृथ्वी पर जीवनार्थ अमृत है, किंतु सब उग्र ज्वरों, त्वग्रोगों और मूत्र विकारों में वह साक्षात् विष है।

अंत्र ज्वर (टाइफायड) में लीमूरस विशेष औषध है और सेब का रस बलप्रद तथा कीटाणुनाशक है।

कास (खांसी)

कास में हमारा देह श्वासनलिका में संचित मल से छूटना चाहता है, जो कि श्वासमार्ग में बाधा डाल रहा है। खांसी के लिए उपवास तथा बृहदंत्र प्रक्षालन करो और पूर्व वर्णित श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया का प्रयोग करो। लाल प्लांडु का रस २४ घण्टे में ३ बार पिलाने से कई क्षय रोगियों को भी लाभ पहुंचा है और यह नाशक रोग बिल्कुल चला गया है। कासमें आप केवल प्लांडु पर रह सकते हैं। यदि प्रातः उठते ही ५ छटांक गरम दूध पियें तो उससे जमा हुआ कफ ढीला होकर निकल जाता है। दाख, अंजीर, शहतूत, आलूचा और शलजम की ताजी कोपलें भी कास में गुणकारी हैं। बादाम, लशुन, प्लांडु, संतरा और बकरी का दूध इसमें विशेष लाभप्रद हैं। छाती में पीड़ा हो तो लीमूरस बराबर जैतून के तेल में गरम करके पीड़ा के स्थान और चारों ओर मलने से अतिलाभ करता है।

प्रतिश्याय (Colds)

ज़ुकाम को क्षुद्ररोग न समझिये। इसका प्रादुर्भाव होते ही प्रतिकार में सावधान हूजिये। सर्व प्रथम उपाय उपवास है और जल भी न पियें तो अच्छा है। नाक को पूर्व वर्णित पिचकारी से या हथेली पर जल लेकर स्वच्छ करो। बृहदंत्र प्रक्षालन भी अवश्य करना चाहिये। दूसरे दिन फलोपवास करो और शनैः शनैः फल तथा सलाद पर पहुंच जाओ। खुली हवा में प्राणायाम भी अतिलाभकर है। श्वेतसारीय आहार सर्वथा निषिद्ध हैं।

टिप्पणी – संतरे का रस ३ भाग और लीमूरस १ भाग, आहार के रूप में, ५ छ० प्रतिदिन ३ बार पीजिये।

नेत्र-रोग

नेत्र-रोग भोज्यौज क की कमी से होते हैं। नेत्रों के शोथ में संतरे या लीमू का रस १ से २ तोले तक स्रुत जल (Distilled water) के साथ, २–३ बार आंख में टपकाने से बहुत लाभ होता है तथा आंख की लाली चली जाती है। कागज़ी लीमू का शुद्ध स्रुतरस नीलिकाकाच (मोतियाबिन्द) के रोग में अनुपम औषधि है। उसकी २–३ बूंद प्रतिदिन डालने से बहुत लाभ होता है। इसके पश्चात् ५–१० मिनट लेटे रहिये। पढ़ते समय पुस्तक को चिबुक के नीचे रखिये जिससे पलकें ऊपर को न उठानी पड़ें और न दृष्टि पर बल ही पड़े। पुस्तकादि पर दृष्टि को लगातार न बांधे रखिये, अपितु कुछ पंक्तियां पढ़ कर बारबार पलक मारते रहिये। इससे नेत्रों का व्यायाम होता है।

प्रत्येक नेत्ररोग के लिए सूर्यकिरणें अत्युपयोगी हैं। इसके लिए सूर्योदय तथा सूर्यास्त समय १०-१५ मिनट तक नेत्रोंको सूर्यके सामने बन्द कर उनपर किरणें पड़ने दें और शरीर को ग्रीवा-सहित घड़ी के पेंडुलम के समान इधर उधर हिलाते रहें। शरीर में झटका न आ जाने की सावधानता रक्खें।

भोज्यौज क तुरत के दुहे दूध मक्खन, प्रत्येक प्रकार के भिगोये शूकधान्य, अंडपीतिमा, गोभी, गाजर, पालक, शलजम-पत्र, शलजम, टमाटर और सोयाबीन में प्राप्तव्य हैं।

टिप्पणी—सूरजमुखी (Hydrastis=गोल्डेन सील) के पत्ते नेत्र दांत और बालों के रोगों में बहुत लाभदायक हैं।

कर्ण-रोग

कान में पीड़ा होने पर लीमूरस कुछ गर्मकर कुछ बूंद सोते समय कान में डालिये। प्रातः उष्ण जल से कान धो डालो। कर्ण पीड़ा में कोई तेल न डालिये, इससे भीतरी पर्दे (Drum) को हानि पहुंच कर श्रवणशक्ति घट जाती है।

पांडु (कमलवाय=जाण्डिस)

६ से १२ तक लीमूरस प्रतिदिन पीना या चूसना चाहिये सन्तरों या संतरों और लीमू का रस मिला कर भी पी सकते हैं। कद्दूकस की हुई गाजरें रातको लीमूरस में भिगो कर खाने से भी इस रोग में बहुत लाभ करती हैं। छाती और पेट पर ज़ैतून तैल बराबर लीमूरस में मिला कर मलिये। आहार में केवल फल और शाक ही लीजिये।

अतिसार (Diarrhea)

प्रथम ज़ैतूनतैल की पूरी मात्रा पीकर २॥ छं० लीमूरस (इच्छा हो तो मधु के साथ) ४-४ घंटे पर पीते रहिये जब तक रोग दूर न हो, अंगूर या संतरे का ही आहार कीजिये। लीमूरस की वस्ति भी लेनी चाहिये।

प्रवाहिका (पेचिश=Dysentry)

प्रवाहिका की चिकित्सा भी अतिसार के समान है। इस में लीमूरस की वस्ति सायं प्रातः ली जाय तो बहुत लाभदायक है।

विशूचिका (कालेरा)

इस रोग में जब वमन और चावल के मांड की भांति दस्त आ जांय तो उष्णजल में लीमूरस डालकर वस्ति कीजिये । लीमू के साथ बराबर ज़ैतूनतैल मिलाना भी अच्छा है । वस्ति २–३ घंटे पश्चात् करते रहो और रोगी के देह की बाह्यस्वच्छता का भी ध्यान रक्खो । उसे पसीना लाने का प्रयत्न करो । रोगी को, नग्न, चारपाई पर लिटा कर तप्त जल में भिगो कर निचोड़े दो खुर्दरे तौलिये उसके सारे देह पर लपेट दो; केवल मुख खुला रहे । फिर कंबल ओढ़ा कर तन्तुओं के नीचे उष्णजल की दो बोतलें रख दो । पसीना आने लगेगा । पसीना न आय तो छाती पर गर्म सेक करो । २॥ तोला लीमूरस ठंडे जल के साथ दिन में चार बार दीजिये । विषूचिका में लीमू अचूक औषधि है और केवल इसी का प्रयोग पर्याप्त है ।

साधारण स्थानिक पीड़ा

अधिकांश स्थानिक पीड़ायें आमाशयविकार के कारण होती हैं और वे मिथ्याहार को बदल कर प्राकृतिक आहार के नियम पालन से चली जाती हैं । उनका बृहदंत्र प्रक्षालन भी अमोघ उपाय है । औषधि के रूप में ३ से ६ तक लीमूरस बराबर तप्त जल में मिला कर दिनमें ४ बार पीजिये और पीड़ा के स्थान पर कागजी लीमूरस में तत्तुल्यमात्रिक ज़ैतून तैल उष्ण करके मलना चाहिये । उक्त स्थान पर सूर्यकिरणों का प्रकाश डालने वा उसको

आग के सामने बैठ कर सेकने से भी बहुत लाभ होता है। अपने हाथ से उक्त स्थान का मर्दन भी वहां जमे हुए रक्त को हटा देता है। अंगों के व्यायाम से भी विकृत पदार्थ का अपसारण होता है।

मूत्राशय-रोग

गंधकाक्त रबड़ के नेत्र (अग्रभाग) वाली छोटी रबड़ की पिचकारी में १-१ छ० लीमूरस तथा ठंडा जल मिला कर और नेत्र को वेस्लीनसे चिकना कर गुदनलिकामें प्रविष्ट कर, शनैः शनैः (बलपूर्वक नहीं) दबा कर, रस को भीतर ले जाओ। इससे अधः शौच के साथ मूत्र भी खुल कर आवेगा। प्रथम यह क्रिया प्रतिरात्रि को नित्य कीजिये, फिर सप्ताह में ३ बार, अगले सप्ताह २ बार और फिर सप्ताह में १ बार करते रहिये। आहार फल और शाकों का होना चाहिये।

मधुमेह

६ से १२ तक लीमूरस बराबर उष्ण जल के साथ प्रत्येक २ घंटे में पियो। इसमें मधु मिला लो तो और अच्छा है। कद्दूकस में कसी हुई गाजर रात भर लीमूरस में भिगोकर (ऊपर स्वच्छ मलमल का वस्त्र ढका रहे) प्रातः खानी चाहिये। इससे मधुमेह को बहुत लाभ पहुंचता है। ज़ैतून तैल भी लीमूरस में मिलाकर पीना बहुत लाभदायक है। कर्मकल्ला के पत्ते भी इस रोग में विशेष उपयोगी हैं। यदि ८ दिन का पूर्णोपवास करके केवल लीमूरस मिला जल पिया जाय तो रोग का उन्मूलन हो जाता है।

इस प्रकार सहस्रों रोगियों ने स्वास्थ्यलाभ किया है। रक्त का संशोधन ही एकमात्र उपाय है। अंगूर का रस और टमाटर का आहार भी परम हितकर हैं। इस रोग में श्वेतसारीय आहार सर्वथा वर्जित हैं। मधुमेह अग्न्याशय (पैंक्रियास) के विकार से उत्पन्न होता है।

अर्श (बवासीर)

अर्शरोग में १८ वा २० घण्टे तक देह में कोई तरल आहार न जाने दीजिये और केवल गेहूं आदि की चोकरदार आटे की रोटी, सूखे फल या मधु के साथ ग्रहण की जाय। रसीले फल और शाकों का सलाद भी छोड़ दीजिये, केवल शुष्काहार कीजिये।

रात को लीमूरस तिगुने पानी में मिला कर वस्ति कीजिये और वस्तिजल को कुछ देर तक भीतर रोकिये। वस्तिक्रिया एक सप्ताह प्रति रात्रि को सोते समय कीजिये, इससे पुराना बद्धकोष्ठ दूर होकर अर्श चला जाता है। वस्ति से पूर्व यदि कोई मस्सा गुदा से बाहर निकला हुआ हो तो शौच के पश्चात् गुदा स्वच्छ करने के कागज (Toilet paper) का टुकड़ा लेकर, उसको लीमूरस में तर करके और तेल चुपड़ कर, हाथ की तीसरी उंगली के सिरे पर रख कर उससे शनैः २ मस्सों को दबाओ और गुदा से ऊपर की मांसपेशी की वलिमें को भीतर ले जाओ। भगंदर (Fistula) रोग में लीमूरस की वस्ति कम से कम दिन में १ बार आवश्यक है। यदि १५ दिन वा अधिक समय तक शुष्काहार किया जाय तो

आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस प्राकृतिक चिकित्सा से अर्शरोग जड़ से नष्ट हो चुके हैं।

नपुंसकता (Impotency)

१– जननेन्द्रिय के सब प्रकार के रोगों के लिये दुग्धचिकित्सा सर्वोत्तम है। (देखो दुग्ध का प्रसंग पृष्ठ ——) इस कार्य के लिये घरेलू पनीर का उपयोग उत्तम है, यह अत्यन्त नपुंसकता नाशक है।

२– बादाम, पिस्ता, नेजा, अखरोट या आम वीर्य की वृद्धि करते हैं। शीत ऋतु में शुद्ध मधु के साथ मिलाकर सेवन किये जा सकते हैं रात्रि में जल या दूध में चने की दाल भिगोकर प्रातः ताजा दुग्ध के साथ इस हेतु भक्षण करना भी अत्यन्त पौष्टिक, वीर्य-वर्द्धक, बलवर्द्धक भोजन है।

३– स्वप्न दोष में १० से २० दाने ताज़ा लसूड़े के फल (सुपिस्तान) एक सप्ताह तक प्रातः या सायं खावे।

४– (बरगद) बोहर के वृक्ष के परिपक्व लाल फल छाया में सुखा कर १५ दिन तक छः माशा मधु के साथ मिला कर खायें तो स्वप्नदोष तुरन्त दूर करता है। इस बातका विचार करना आवश्यक है कि ये फल पृथ्वी पर गिरे हुए, और लोहे से भी काटे हुए न हों, प्रत्युत हाथ द्वारा वृक्ष से उतारे जांय और मेज़ पर छाया में सुखाने के लिए रख दिये जांय।

५– निर्बल और छोटी सुकड़ी हुई जननेन्द्रिय के लिये (वेकम

यन्त्र) का उपयोग भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके उपयोग से इन्द्रिय में ताज़ी वायु भर दी जाती है और इन्द्रिय के नस नाड़ियों के तन्तु खुल जाने से इन्द्रिय स्थूल हो जाती है। इस विषय में अधिक अन्वेषण के लिए लेखक को लिखें।

स्त्रियों के रोग

स्त्रियों के अधिकतर रोगों का मूल कारण मात्रा से अधिक भोजन करना है। अधिक भोजन से उदर की आन्तड़ियों पर भार अधिक बढ़ जाता है और इसके परिणाम स्वरूप कोलन अर्थात् मल की अन्ध आन्तड़ियों में विजातीय द्रव्य एकत्रित होकर अधिक स्थान घेर लेते हैं और गर्भाशय के तन्तुओं की स्वाभाविक वृद्धि में रुकावट उत्पन्न कर देते हैं, अतः सर्वोत्तम स्वास्थ्य का प्रथम साधारण नियम यह है कि उदर की बद्धकोष्ठता को दूर करने के लिए कोलन और स्त्रियों के योनि मार्ग को स्वच्छ रखा जावे। पुराने रोगों में कम से कम दो बार एक सप्ताह में पेट की अन्धनाड़ियों की कोष्ठबद्धता को साफ करना अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय योनि मार्ग (Vagina) में शोथ या वरम उत्पन्न हो जावे तो लीमूरस में चार गुना ताज़ा शीतोष्ण जल मिलाकर योनिमार्ग को प्रातः सायं धोना चाहिये।

इन अवस्थाओं में ठंडे ताज़े जल द्वारा (Citz bath) जननेन्द्रिय स्नानविधि का उपयोग भी अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यहां तक कि हिस्टेरिया जैसे भयानक रोगों की चिकित्सा

भी उक्त विधि से स्नान द्वारा की जा सकती है।

प्रकृति के नियमानुसार नव युवती लड़कियों का स्वाभाविक मासिक धर्म का ठीक समय पूर्णमासी है। इस तिथि से पूर्व या पश्चात् मासिक धर्म का आना अस्वस्थता का सूचक है।

गर्भपात साधारणतया प्रथम चार मास के भीतर होता है। जब इसका भय प्रतीत होवे तो रोगी को ऐसी चारपाई पर लेटना चाहिये, जिसके पांव कुछ ऊपर हों। साथ ही तुरन्त अनीमा करना चाहिये। और भोजन के लिये केला देना चाहिये। ऐसी घटनाएं तभी सम्भव होती हैं जब कि स्त्रियें स्वाभाविक उत्तम पौष्टिक भोजन नहीं खातीं। हमारे साधारण भोजन में कैल्सियम धातु की मात्रा अधिक होनी चाहिये, जो हरे शाक सब्जियों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। गर्भ के दिनों में संतरे खाने से सुन्दर हृष्टपुष्ट सन्तान उत्पन्न होती है।

प्रदर

प्रदर सरीखा भयंकर रोग अधिक विषय सेवन करने से होता है अतः इस भयानक रोग से बचने का सब से उत्तम उपाय यह है कि अपनी मानसिक वासनाओं को विषय भोगों की ओर से हटाकर यथाशक्ति ब्रह्मचर्य का पालन किया जावे। जिस प्रकार अधिक विषय सेवन से मनुष्य के शरीर में वीर्य की कमी तथा निर्बलता और प्रमेह सरीखा भयंकर रोग अपना घर बना लेता है ठीक इसी प्रकार अधिक विषय सेवन से स्त्रियों के शरीर में प्रदर अपना घर बना लेता है और उनके शरीर की मुख्य धातु को बहाता हुआ उनको निर्बल बना डालता है।

इस रोग से छुटकारा पाने के लिये योनि को १ भाग लीमू रस जो कि ४ भाग ताज़े या उष्ण जल में मिला हो उससे उत्तरवस्ति (Vagina-rysinge) द्वारा स्वच्छ करना चाहिये। आभ्यन्तर स्वच्छता अत्यावश्यक है शाक और फलों का प्राकृतिक आहार अनिवार्य है। खुली वायु में निवास तथा साधारण स्नान भी अत्यावश्यक है ।

अर्धांग (Paralysis)

इस रोग की औषध तथा आहार लीमू ही है। २१ दिन तक पूर्ववर्णित लीमूकल्प वा लीमूचिकित्सा करनी चाहिये और पीड़ित स्थान में बराबर लीमूरस ज़ैतून तैल में मिला कर पीना चाहिये। व तप्तजल में खाने का लवण मिला कर पीड़ा के स्थान पर भले प्रकार रगड़ कर मलना चाहिये। प्रतिदिन का धूपस्नान भी अतीव उपयोगी है। शुद्ध मधु के आहार से रोगी का बल बना रहता है और रोग भी शीघ्र चला जाता है।

अंत्रभ्रंश (आंत उतरना)

बृहदंत्र (कोलन) में चिरकाल तक मल के अति संचय के भार से शोथ (सूजन) आजाता है। शोथ से बढ़ कर वह औदरीय कला (Peritonium) के किसी निर्बल स्थान को भेद कर जंघा से (Groin) आदि में होकर अंडकोष आदि में उतर आती है। इस रोग में किसी न किसी स्थान में कला का भेदन अवश्य होता है, अतः इस रोग का मुख्य कारण प्रायः पुराना कोष्ठबद्ध ही होता है।

चिकित्सा:—प्रथम ३ से ७ दिन तक उपवास किया जाय और इस अवधिमें बिना व्यवधानके प्रतिदिन वस्ति ली जाय जिस से पुराना संचित दुर्गन्धित मल बाहर निकलकर बृहदंत्र हलका हो जाय और शोथ दूर होकर वह अपने नियमित आकारमें आजाय। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन १०–१५ मिनट ठंडे जल के टब में भी बैठना चाहिये। इसके पश्चात् प्राकृतिक आहार और प्राकृतिक नियमों का पूर्ण पालन हो और आगे भी बना रहे। जो जन पूर्ण उपवास न कर सकते हों, उनको १ मास तक केवल फलों पर निर्वाह करना चाहिये। बृहदंत्र का शोधन प्रत्येक अवस्था में अनिवार्य है।

कर्कटार्बुद (कैंसर)

प्रतिदिन बाह्य-स्नान अवश्य करते रहना चाहिये तथा आहार केवल रसीले फलों और शाकों का होना चाहिये। ज़ैतून तैल और लीमूरस मिले सलाद भी खाने चाहिये। अन्य कोई पदार्थ न खाइये। फोड़े पर जहां से राद निकल रही हो, वहां लीमू, नारंगी, सेब, गाजर, प्लांडु में से किसी का गूदा कूट कर शीतल या कवोष्ण पुल्टिस के रूप में लगाना चाहिये, किन्तु उस पर पट्टी न बांधिये और फोड़े में प्रकाश तथा पवन का प्रवेश होने दीजिये। फोड़े पर कोई मृदु सोखने वाला पत्ता भी रख सकते हैं। नींबू रस तुल्यमात्रिक ज़ैतूनतैल में मिला कर फोड़े के चारों ओर लगाइये और फोड़े के अंदर भी डालिये। जब-जब सम्भव हो उसपर सूर्यकिरणें भी डालिये, इनका गुण स्वास्थ्यकर है। रोगी को विश्राम करने दो—निद्रा का स्वागत करो और धैर्यपूर्वक

सफलता की प्रतीक्षा करते रहो। आहार प्राकृतिक होना चाहिये। दूध, तक्र, श्वेतसारीय पदार्थ और अखरोट का प्रयोग न कीजिये। फोड़े की आभ्यंतर स्वच्छता के लिए लीमूरस और ३-४ भाग जल के साथ (वा केवल) संतरे का रस भीतर पहुंचाना लाभदायक है। यदि चिकित्सा के अन्तिम दिनों में रोगी के देह का भार घटता जाय तो इसकी कुछ चिन्ता न करनी चाहिये। विकृत द्रव्य को निष्काषण का अवसर मिल रहा है और उससे देह-भार का अपनी प्राकृतिक दशा में पहुंचना अनिवार्य है। कृश हो जाने पर भी, स्वास्थ्यलाभ के पश्चात् आप पुनः पूर्ववत् हृष्टपुष्ट हो जांयगे।

राजयक्ष्मा (क्षय)

क्षय, आदि में फुफ्फुसों का रोग नहीं होता; किन्तु वह सारे शरीर का विकार है और विशेषतः पाचन संस्थान की गड़बड़ से शरीर में अस्वाभाविक उष्णता बढ़ कर, उत्पन्न होता है। उष्णता देह के विकृत पदार्थों की दहन-क्रिया से पैदा होती है। क्षय रोग में १ से ३ दिन तक का उपवास और प्रतिदिन मध्याह्न में वस्ति कीजिये। रोगी बहुत पेशल हो तो उसे उपवास न करा के फलों के रस पर रखिये। औषध के रूप में संतरा, अंगूर, अनार का रस सममात्रा के स्नुत जल में मिला कर २४ घंटे में ४ बार पीजिये और महीनों सानन्द पीते रहिये।

१- दिन-रात खुली वायु में रहिये और प्रतिदिन नियम से प्राणायाम कीजिये। सूर्यस्नान प्रारम्भ में कुछ मिनट और

आगे प्रतिदिन समय बढ़ाते हुए करते रहिये। इसमें कभी चूक न होनी चाहिये स्नान के पश्चात् सारे शरीर को भीगे तौलिये से पोंछकर और हाथों से मल सुखाकर वस्त्र पहन लीजिये।

२- चिकित्साके प्रारम्भमें, सप्ताह में एक बार रोगी को आर्द्र-वस्त्र वेष्टन (वेट शीट पैक) तथा उदरस्नान (Citz bath) कराते रहिये। इसका पालन दृढ़तापूर्वक होना चाहिये।

३- प्राकृतिक आहार-विहारके नियमोंका पालन आवश्यक है।

४- रसीले फल, दाख और गिरियां वा लीमूरस मिश्रित जैतून तैल का आहार स्वास्थ्यलाभ पर्यन्त चलता रहे। प्रसन्न-चित्त रहो और यदि आपका स्वर गाने के उपयुक्त न हो तो भी कोई गान गुनगुनाते रहो। दिनमें कई बार प्राणायाम करो।

५- राजयक्ष्मा और क्षय में पूर्ववर्णित दुग्धकल्प की चिकित्सा भी लाभदायक है। दूध की तोल का यह नियम है कि रोगी के शरीर की १ फुट ऊंचाई के लिए २॥ पाव (१ कार्ट) दूध दिया जाय।

६- क्षय रोगियों की खांसी के लिए निम्नयोग अति उपयोगी है :—जैतून तैल १ भाग, लीमूरस २ भाग, मधु १ भाग वा मूलीरस १ भाग, मधु २ भाग वा प्लांडु रस १ भाग, मधु २ भाग मिला कर दिन रात में कई बार चटाइये। पोदीने की चटनी भी गुणकारी और क्षुधावर्धक है।

एक महाराष्ट्र डाक्टर ने फुफ्फुस रोगों में प्राणायाम को स्वास्थ्यापादक (Health generator) बतलाया है। इस विषय में हम से पत्र व्यवहार करें।

स्मरणशक्तिवर्धक उपाय

जो पदार्थ नेत्रों के सामने आये, उसको ध्यानपूर्वक देखने का अभ्यास डालिए। जिस बात को आप स्मरण रखना चाहते हैं, उसका चित्र अपने चित्त में बनाइये और ध्यान में बठाइये-अपने मन पर उसका संस्कार दृढ़ कीजिये। स्मृति मन की वह सामर्थ्य है जिसके द्वारा मनुष्य स्वेच्छानुसार अपने विचारों को बारबार मन में दुहराता है। यदि वह उन विचारों की पुनरावृत्ति नहीं कर सकता तो हम उसको भुलक्कड़ कहते हैं। मानसिक विचारों की पुनरावृत्तिके अभ्यासको दृढ़ बनाने से ही स्मृति बढ़ती है। वह एक प्रकार से चित्त की एकाग्रता पर ही अवलम्बित है।

निर्बलता-निवारक योग

देह की निर्बलता को दूर करके बलप्राप्ति के लिए केला, सेब, संतरा, अंगूर, किशमिश, पिस्ता, बादाम, जैतूनतेल, सोयाबीन, पालक, टमाटर, प्लांडु और धारोष्ण दुग्ध उत्तम आहार हैं। श्वेतसारीय पदार्थ बिल्कुल न खाइये। शोक और चिन्ता को पास न फटकने दीजिये। आपके मन का मोर सदा आनन्द से नाचता रहेगा तो निर्बलता शीघ्र ही भाग जायगी।

चित्त की एकाग्रता

पूरा विश्वास रखिये कि इस संसार का कोई स्रष्टा अवश्य

है। उसके नास्तित्वकी कभी शंका तक न कीजिये। उसका अदृश्य सर्वव्यापक रूप विविध नामों से विख्यात है। विज्ञान ने उसके अस्तित्व को स्वीकार किया है और घोरसे घोर नास्तिक भी उसकी विद्यमानता को किसी रूपमें अवश्य मानता है। उर्दू कवि मौलाना हाली ने कहा है :—"मुनकिर ने किया दहर से ताबीर तुझे, माना नहीं जिसने तुझको जाना है जरूर। इनकार किसी से बन न आया तेरा।" उसकी माया को (प्रकृति को) न मानने वाला ढूंढे से कदाचित् ही कोई मिलेगा। आपका सिरजनहार आपके भीतर अपने ज्योतिर्मय और महिमामय स्वरूप में विराजमान है। मनुष्य का प्रभु स्वयं उसके भीतर ही वास करता है। उसे ढूंढने के लिए दर २ भटकना मूर्खता है। अपने परमपिता प्रभु के साथ आध्यात्मिक साहचर्य का अभ्यास कम से कम दिन में १ बार अवश्य करना चाहिये। उसका ध्यान कम से कम १ बार अवश्य कीजिये। चित्त में एकाग्रता और शांति धारण कर उसके वरदान और कल्याण का चिन्तन कीजिये। अपना मन और देह संसार की सेवा के लिए अर्पण कर दो, यही उस परमपिता की परमभक्ति है। यदि आप सब को भलाई में अपनी भलाई समझ कर, मनुष्य मात्र को अपना बन्धु मानते हुए उसके हितचिन्तन में तत्पर रहेंगे और इस वृत्ति का कभी उल्लंघन न करेंगे तो स्वस्थता एवं समृद्धि सदा आपकी बन कर रहेंगी।

कभी न भूलिये कि प्राकृतिक आहार और सरल विचार ऐसे ग्राह्य बलप्रद द्रव्य हैं कि मनुष्यमात्र को इनका सेवन सदा करते रहना चाहिए।

उपसंहार

अन्त में मेरा अपने सब बन्धुओं से निवेदन है कि स्वास्थ्य और आनन्द के रहस्य तक प्रत्येक पुरुष की पहुंच हो सकती है और इसके लिए केवल दृढ़ संकल्प सामर्थ्य के उत्पादन की आवश्यकता है। वही कल्याण के आकलन का कल्पतरु है। स्वास्थ्य और रोग से प्राकृतिक आहार का जो अटूट सम्बन्ध है तथा इस आहार से जो लाभ प्राप्त होते हैं उनकी व्याख्या मैंने बिना किसी शब्दाडम्बर के यथासम्भव संक्षेप से करदी है और मुझे पूर्ण आशा है कि वर्तमान और भावी संततियां आवश्यकता के समय इससे लाभ लेंगी। योरुप और अमेरिका के सहस्रों चिकित्सक आजकल आहार चिकित्सा को अपना एक मात्र साधन बना रहे हैं। और उससे भारी सफलता प्राप्त कर रहे हैं। मुझ को अपनी न्यूनताओं का ज्ञान है किन्तु जब मनुष्यता के सम्बन्ध के स्वबंधुओं को नाना प्रकार के रोगों से कष्ट पाते हुए देखता हूं तो मुझको वास्तविक स्वास्थ्य प्राप्ति के इस अमोघ, अचूक और व्यय शून्य उपाय के प्रकाशन में विलम्ब करने का साहस नहीं होता। प्रकृति पुकार २ कर यह मांग कर रही है कि पाचन संस्थान को विश्राम देकर स्वदेह को स्वच्छ कीजिये। फलों और शाकों के आहार में कुछ भी कठिनाई नहीं दीखती है। ये पदार्थ खाने में स्वादु, देखनेमें सुन्दर, और सब प्रकारसे मनोहर हैं। मधु वह सब से शुद्ध प्राकृतिक शर्करा है, जिसका उपभोग प्रत्येक मनुष्य अनायास कर सकता है। आत्मशुद्धि और आत्मसंयम दीर्घ जीवन के

दो मुख्य साधन हैं। यदि आप अपनी परिस्थिति में तुरन्त पूर्ण परिवर्तन कर लें तो आप जीवन के मधुर फलों का आनन्द उठा सकेंगे। सुअवसर की घड़ी एक बार ही आती है, वह एक बार ही आपका द्वार खटखटाती है; अतः उससे तुरन्त लाभ उठाइये। कल २ करने वालों का कल कभी नहीं आता है।

हम सब से बड़ी भूल यह करते हैं कि किसी घटना के कार्य को ही कारण समझ लेते हैं, अर्थात् हमको कार्य-कारण का उल्टा ज्ञान होता है। रोग देह में संचित मलों को बाहर निकालने के प्रयत्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं। रोग द्वारा हमारे देह विकृत पदार्थों से शुद्ध हो जाते हैं, किन्तु वर्तमान चिकित्सा प्रणालियों द्वारा रोगों का दमन मात्र होकर प्रकृति का किया हुआ देह शोधन का कार्य रुक जाता है। हमारे विषाक्त रुधिर में विकार वा दोष उस समय तक बने रहते हैं, जब तक मानों आत्म-घात द्वारा हमारी मृत्यु नहीं हो जाती। प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त यह है कि सब प्रकार के रोगों का जन्म एक ही कारण से होता है और रोगों को अच्छा करने का सामर्थ्य स्वयं देह के भीतर विद्यमान है। हम इस सामर्थ्य से यथेच्छ लाभ उठा सकते हैं। चिकित्सा क्या है? वह केवल रोग के कारण को हटा देना है और स्वास्थ्य का स्थिर रखना उस कारण को दूर रखना है। आप को वास्तविक स्वास्थ्य और रोग का स्वरूप भले प्रकार समझ लेना चाहिये। आप खड़िया और मक्खन का अन्तर समझिये दोनों को श्वेतिमा के भ्रम में पड़ कर एक न समझ लीजिये। स्वास्थ्य

अपने वैयक्तिक प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा ऐसा उपाय है कि उसका दुरुपयोग कभी नहीं हो सकता और वह कष्टों से छूट कर स्वास्थ्यलाभ का अमोघ साधन है।

आपके मिथ्याहार-व्यवहार में मौलिक क्रांति की आवश्यकता है। प्राकृतिक चिकित्सा अप्राकृतिक जीवन के प्राकृतिक जीवन में परिवर्तन का नामान्तर-मात्र है। आप प्रकृति के पूर्ण अनुयायी बनेंगे तो आपको स्वास्थ्य और समृद्धि का दर्शनलाभ वैसा ही निश्चित है जैसा कि वर्षा की ऋतु में वर्षा का दर्शन अवश्य होता है।

ग्रन्थप्रणेता के निम्नांकित मूल अंग्रेज़ी पद्यों के अनुवाद रूप में अनुवादक द्वारा रचित इन संस्कृत पद्यों को इस ग्रन्थ के सार रूप में सदा कंठस्थ रखिये और उनको अपने रहन-सहन से कार्य में परिणत कीजिये :—

Act immediately when sick,
As trifles soon turn into thick.
Fast will prove you healing rod,
Doctor's need your never stick.
Juices of the fruits are cure from God,
They will surely heal you quick.
Sun air and water, you tolerate lot,
This is the "*Narain's*" guide you pick.

—*L. N.*

प्रारंभे क्षुद्ररोगस्य, कार्योपेक्षा न जातुचित् ।
चिकित्सायां प्रमादेन, महारोगः स जायते ॥१॥
पूर्वाचार्यविनिर्दिष्टं, लंघनं परमौषधम् ।
ऐन्द्रजालिकयष्टीव, रोगशान्तिकरं महत् ॥२॥
मुखापेक्षा तु वैद्यानां, कर्तव्या न कदाचन ।
यतस्तेषां प्रयोगाणां, साफल्ये संशयः सदा ॥३॥
पथ्यं शाकफलादीनां, नैसर्गिक-महौषधम् ।
तेषां हि सतताहारः, सद्यः स्वास्थ्यकरो भवेत् ॥४॥
प्रकाशं सूर्यरश्मीनां, पवनं निर्मलं जलम् ।
सेवेत सततं धीमान्, त्रीणि स्वास्थ्येच्छुको नरः ॥५॥
"नारायणस्य" शिक्षेयं, जनानां स्वास्थ्यकांक्षिणः ।
स्मर्तव्या सततं सद्भिः, पालनीया च सर्वदा ॥६॥

अर्थः—रोग होने पर उसका तुरन्त प्रतीकार करो, क्षुद्ररोग ही काल पाकर भयंकर रोग बन जाते हैं । उपवास प्राचीन आचार्यों की बताई हुई सबसे बड़ी औषध है और बाजीगर के डंडे के समान सब रोगों को दूर करने वाला है । आपको वैद्यों का मुंह जोहने की आवश्यकता नहीं है । फलों के रस दैवी चिकित्सा हैं, जिनके सेवनसे आप निश्चय ही अतिशीघ्र नैरोग्यलाभ करेंगे । सूर्य-प्रकाश, वायु और जल को आप पर्याप्त मात्रामें ग्रहण कीजिये यह "नारायण" की सीख आप गांठ बांध लें ।

स्वास्थ्य-रक्षा जीवित एकाहार पर निर्भर

इस बात को स्मरण रखो कि हमारे रोगों का मुख्य कारण (आकस्मिक दुर्घटनाओं के अतिरिक्त) उन विजातीय द्रव्यों की उत्पत्ति है, जो हमारे शरीर में अग्नि से पकाये परस्पर अनेक प्रकार के भोजनों के सड़ाद से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार का कृत्रिम ताप हमारे जीवन का नाशक है और हमारे शरीर के आन्तरिक मौलिक तत्वों को परिवर्तित करके शक्ति-शून्य कर देता है। अग्नि द्वारा पकाया भोजन वस्तुतः निर्जीवित अर्थात शक्ति-शून्य है।

सूर्य देवता की अग्नि से स्वाभाविक रूप से पके, प्रत्येक प्रकार के शुद्ध, ताज़ा जीवित भोजन, जिनको संसार के सब जीव जन्तु, पशु-पक्षी भक्षण करते हैं, जहां शरीर में सड़ाद तथा उफान को पैदा नहीं होने देते, वहां देह से विजातीय विषयुक्त द्रव्यों को बाहर निकालते रहते हैं, तथा हमारे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा और पालना करते रहते हैं। ये सब जीवजन्तु उक्त प्रकार के एक ही प्रकार के भोजनों के आहार से सदा प्रसन्न और नीरोगी रहते हैं। और बहुत कम ही कदाचित् रुग्ण होते हैं। इनका जन्म और मृत्यु भी शांतमय होता है।

मनुष्य देह की रचना एक जीवित घटना है। इसकी रक्षा और पालने के लिए जीवित भोजन की आवश्यकता है। अग्नि से पकाये गये सार-रहित भोजन हमारे जीवन में जीवन-शक्ति के संचार के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। जीवन-शक्ति युक्त

भोजन के आरम्भ के लिये हमें निम्नलिखित विधि का अवलम्बन करना चाहिये:—

प्रथम एक दिन उपवास कीजिये और प्रबल इच्छा तथा शक्ति द्वारा भूख को सहारा करना सीखिये। जब हृदय मतलावे या वमन की इच्छा हो, उससे पूर्व या पीछे कुछ २ समय के अंतर पर पर्याप्त मात्रा में शुद्ध स्वच्छ जल थोड़ा २ घूंट २ पी लो। यदि शरीर के किसी भाग में पीड़ा हो या कफमिश्रित मल निकले तो उस समय उष्ण जल पान करना उचित है। जुकाम और बवासीर के रोगियों को जल सर्वथा न पीना चाहिये। यदि पीने की इच्छा हो तो १८ घण्टों के पश्चात् पीना।

इस उपवास के दिन वस्तिकर्म (अनीमा) करे या निम्नलिखित फलों में से किसी एक का सेवन करे।

१—ताज़ा या शुष्क आलूबुखारा १० दाने
२— „ „ „ खजूर के १० दाने
३— „ „ „ खुरमानी १० दाने
४—ताज़ा या शुष्क अंजीर के १० दाने

५—एरंड, जैतून, बादाम, तिल के तेलों में से किसी एक का तेल २ या ३ औंस तक पीवे।

६—एक गिलास ताजा शीतल जल में एक नीबू का रस मिला कर पीवे।

७—२० ग्रेन सनाह के पत्तों का चूर्ण रात्रि को सोते समय पीवे।

दूसरे दिन सच्ची वास्तविक भूख लगने पर निम्नलिखित फलों में से किसी एक का रस शीतल या उष्ण जल में मिला कर सूर्योदय से सूर्यास्त तक दो २ घण्टों के पश्चात् पीना चाहिये। संतरा, नींबू, अंगूर या किशमिश मुनक्का (रात्रि के समय पानी में भिगो कर रखी हुई), अनार पाहन एपल, वा पपीता का रस इत्यादि। तीसरे दिन तीन घण्टे के पश्चात् बिना जल मिला उपर्युक्त फलों का रस, टमाटर, प्याज़, गाजर इत्यादि कच्चे खाना चाहिये। इसके पश्चात् चौथे दिन प्रातःकाल के भोजन में कोई अपने देश की ऋतु के अनुसार गूदे वाला फल, ताज़ा दूध या लस्सी या रात्रि में भीगी हुई किशमिश खावे। मध्याह्न में कोई ताज़ा कच्ची सब्ज़ी (देखो विषय सलाद) उसके पश्चात् नींबू का रस मिला जैतून का तेल या कोई शुष्क फलों की गिरियां, जैसे अखरोट, बादाम, पिस्ता, नेज़े मूंगफली इत्यादि, या शहद मिला नींबू का रस सेवन करे। रात्रि के भोजन में तीन से पांच तक केले या (दिन में भिगो कर रखा हुआ) ½ पौंड सोयाबीन या कोई अनाज, या कोई अच्छे प्रकार धोया हुआ मेवा जैसे किशमिश, या खजूर। खाते समय पानी सर्वथा न पीना चाहिये। दो घंटे के पश्चात् पानी पी सकते हैं। यदि शरीरमें (Acidity) आम्लिक अंश विद्यमान हो तो भिगोये हुए अन्नों, तैलों तथा फलों की गिरियों के उपयोग से बचना चाहिये। केवल नींबू, नारंगी, अनार अंगूर इत्यादि या रात्रि में भिगो कर रखे हुए आलूबुखारे या किशमिश का रस लेना उचित है। जब तक शरीर में उष्णता

उपस्थित है, प्रत्येक प्रकार के ठोस भोजन और दूध नहीं लेना चाहिये।

पुराने रोगों में ५ दिन उपवास करना चाहिये। प्रत्येक दिन अनीमा का उपयोग मध्याह्न में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। यदि ऐसा न हो सके तो कोई सूखा मेवा जैसे किशमिश अंजीर, खजूर, खुरमानी या आलू बुखारा या ताज़ी सब्ज़ी जैसे, टमाटर, प्याज़, गाजर इत्यादि खाना चाहिये। इनके उपयोग से शरीर के भीतर विजातीय द्रव्यों के सड़ाद से उत्पन्न हुए रोग निकल जाते हैं और देह को बहुत शीघ्र शान्ति और विश्राम मिलता है।

प्रतिदिन शीतल जल से स्नान करना, या भीगी हुई चादर लपेटना या सारे शरीर को स्पंज से साफ करना अत्यावश्यक है। छठे दिन और इसके पश्चात् जब तक शरीर स्वस्थ न हो, ताजा फल, संतरा शाक, केले या भीगी हुई सोयाबीन का सेवन करना उचित है। जब देहका आम्लिक अंश (Acidity) ठीक हो जावे, थोड़ी २ शुष्क फलों की गिरियां या तेल का उपयोग आरम्भ कर सकते हैं। यदि भूख न हो पोदीने के पत्ते और नींबू के रस की चटनी या नींबू के रस में शहद मिला कर खाना हितकर है, और इसके उपयोग से असली भूख लगती है।

शरीर में रक्त की न्यूनता के समय केला और दूध, गाजर और टमाटर–नींबू और ज़ैतून का तेल बादाम या मक्खन में शहद मिला कर खाना तथा ताज़े हरे चने या अच्छी तरह भीगे हुए चनों के साथ दूध पीना बड़ा लाभदायक होता है। चर्म रोगों में नींबू का रस और प्याज़ प्रत्येक अवस्था में लाभदायक है।

मांस और हड्डी के दर्द और शोथ में ज़ैतून का तेल और नींबू का रस बराबर मात्रा में मिलाकर गर्म करके मलना चाहिये। रुग्ण भाग पर सूर्य की किरणों का सेक भी शोथ और दर्द को दूर करता है।

जब तक सच्ची भूख न लगे, तब तक भोजन मत करो। मास में एक बार नियमानुसार एक दिन का उपवास करो, क्योंकि अधिक काम से थके हुए अंगों को विश्राम की आवश्यकता होती है। वह भोजन जो अग्नि द्वारा न पकाया गया हो कभी आवश्यकता से अधिक नहीं खाया जा सकता। मेदे में उचित मात्रा से अधिक भोजन के चले जाने से भूख स्वयं बन्द हो जाती है।

फलों का रूप और रंग ही चित्ताकर्षक है। अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि फल स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम आहार हैं। स्मरण रखो कि सादगी एक अच्छी टानिक है और इसमें महान् शक्ति है। यदि इस विधि पर अनुसरण किया जाए तो आयु पर्यन्त शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियां उत्तरोत्तर विकसित होती रहती हैं। मनुष्य मात्र के सम्पूर्ण रोगों को दूर करने की यह एक अचूक औषधि है। इससे आयु की वृद्धि और दीर्घ आयु तक बुढ़ापा नहीं आता। चिकित्सा वस्तुतः ठीक विधि से भोजन करना और अपने उद्यम से जागृत किये हुए बल को कहते हैं।

अग्नि के ताप से पका हुआ प्रत्येक प्रकार का भोजन कष्ट-दायक होता है। प्रतिदिन शरीर की त्वचा को धोकर साफ करो।

समय २ पर ताज़ा जल के ३ छोटे २ आचमन कुछ २ काल के पश्चात् पीने और २४ घण्टों में चार बार गहरे २ श्वास लेकर प्राणायाम करने, रीढ़ की हड्डी सम्बन्धी व्यायाम प्रातःकाल करने तथा प्रातःकाल नियम पूर्वक भ्रमण करने से आयु की वृद्धि होती है। गाना, हंसना एक अच्छा स्वभाव है। प्रत्येक नर नारी के लिए ऐसा करना मानदायक और कष्ट समय लाभदायक है। प्रकृति में अंध विश्वास रखिये और इसी विश्वास से ही हर्ष प्राप्त होता है। यह मनुष्य जीवन के रहस्य उद्घाटन की स्वर्णमय कुञ्जी है।

आहारः परिपाकेन, निर्जीवो जायते ध्रुवम्।
अन्नानां शक्तिशून्यानां, भक्षणं दूषणं मतम्॥
सेवनं फलशाकानां नैसर्गिक-भोजनं मतम्।
यशस्यञ्चायुष्करं चैव, ज्वरदाहविषापहम्।

अग्नि द्वारा पका हुआ भोजन निश्चय रूप से निर्जीव अर्थात शक्तिशून्य हो जाता है। शक्तिशून्य अन्नों का भक्षण दूषित कहा गया है, फल शाकादिको उत्तम भोजन माना गया है। क्योंकि इनके सेवनसे आयु, तेज बल बढ़ता है और वे ज्वर उष्णता तथा विजातीय द्रव्योंके सड़ांदसे उत्पन्न शारीरिक विषको नष्ट करते हैं।

इससे बढ़ कर कोई चिकित्सा पृथ्वीतल पर विद्यमान नहीं है। कस्तूरी की सुगन्धि के लिये विक्रेता को शपथ की आवश्यकता नहीं होती। तम्बाकू, काफी, और चाय, मद्य आदि उत्तेजित विषाक्त द्रव्यों का सेवन त्याग दो।

आपके जीवनके बहुमूल्य टकसाल में इन द्रव्यों की सर्वथा

आवश्यकता नहीं। अतीत काल को सदा के लिये भुला दो। ताज़े जीवित फल, सब्ज़ी, शाक, शुष्क फलों की गिरियां हमारा मुख्य भोजन होना चाहिये। मिट्टी; जल-सूर्य प्रकाश, पवन और आकाश सदा आपके सहायक हों। स्वास्थ्य का सेवन कीजिये और रोगों के मूलकारण को दूर करना सीखिये। साधारणतया रोग शरीर में मल के विद्यमान होने का नाम है। इसकी चिकित्सा केवल शरीर से इन मलों का, जो रोगों की जड़ हैं दूर करना ही है। यह सचाई का डंका जादू की लकड़ी की तरह सारे जगत में फैला देना चाहिये। चिकित्सा के लिये शुद्ध आहार पर ही निर्भर रहो और सदा के लिये शान्तिमय नीरोगी जीवन को व्यतीत करो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।



❀ ॐ ❀

॥ स्वास्थ्यं सर्वस्वम् ॥

स्वास्थ्य रक्षा के १२ नियम

१-कुछ भी खाने-पीने से पूर्व और पश्चात् अपना मुंह हाथ अवश्य धो लो।

२ भोजनशाला में स्वस्थ, प्रसन्न तथा उत्साह-पूर्ण मन के साथ जाइये और वहां कोलाहल से दूर, सुखपूर्वक भोजन करने बैठिये।

३ क्रोध, शोक और चिन्ता के होते हुए कभी भोजन न कीजिये।

४-फलों और ताज़े शाकों को सभी समयों के लिए सदा आदर्श आहार समझो। भोजन शरीर के पोषण के लिए करो, पेट को आटने के लिए कदापि नहीं।

५-कई प्रकार के परस्पर विपरीत अनेक रसों वाले आ-हारों को एक साथ मिला कर न खाना चाहिए। आहार की सरलता से ही देह में बल आता है यह भावना अपने चित्त में दृढ़ बनाए रखिये।

६-भोजन के साथ जल न पीना चाहिये और न दो भोजनोंके बीच के समयमें कभी कुछ खाना उचित है।

७–भोजन को शनैः २ और प्रत्येक ग्रास को भले प्रकार चबा कर खाइये।

८–भोजन करते हुए वा भोजन के पीछे भरपेट हंसने का कोई हेतु निकालिए।

९–प्रत्येक प्रातःकाल सूर्य्य के उदय से पूर्व सदैव नित्य स्नान करो शरीर के चारों अन्तर्द्वारों (भीतरी मार्गों=१-मुख, २-नाक, ३-नेत्र तथा ४-रोमकूपावली) को अनेक बार निर्मल जल से धो कर सदा चालू दशा में स्वच्छ रक्खो।

१०–प्रातःकाल लंबा भ्रमण नित्य किया करो। उसमें एक दिन भी कभी चूकना नहीं चाहिए।

११–प्रतिदिन और प्रतिरात्रि कमसे कम चार बार खुली वायुमें प्राणायाम किया करो–गहरे सांस लिया करो।

१२–रातको १० बजे से पूर्व सो जाओ और प्रातःकाल ५ बजे से पूर्व सोते से उठ जाओ। चिन्ताओं से सदा दूर रहो, और सर्वदा अपनी अन्तरात्माके आदेश पर चलो।



—इस पुस्तक के विषय में—

समाचार-पत्र आदि में प्रकाशित

आलोचनाएं

ट्रिब्यून (Tribune) लाहौर,

२० अगस्त १९३९

इस छोटी सी पुस्तक में स्वास्थ्य और शारीरिक रोगों से भोजन के सम्बन्ध का सुन्दर वर्णन है। यह पुस्तक प्राकृतिक स्वास्थ्यशास्त्र (Naturopathy) के दृष्टिबिन्दु से लिखी गई है। ग्रन्थकर्त्ता ने विविध शीर्षकों के नीचे फलों, शाकों, लवणों तथा शर्करा आदि के आहारात्मक गुणों की व्याख्याका प्रयत्न किया है और विविध प्रकार के स्नानों, उपवास और व्यायामों के प्रभावों और गुणों का विशद वर्णन किया है। ग्रन्थकर्त्ता ने दृढ़तापूर्वक इस बात का समर्थन किया है कि अधिकांश शारीरिक रोगों का कारण ढूंढा जाय, तो वह दोषपूर्ण आहार का सीधा परिणाम ही पाया जायगा। साधारणतः स्वीकृत इस सिद्धान्त से उसने प्रायः एक नवीन और कुछ विलक्षण-वादको प्रस्तुत किया है। व्यवसायी वैद्य को उसकी इस बात से निराशा होगी कि सारे रोगों की सफलतापूर्वक चिकित्सा भोजन के सुधार से हो सकती है। इसी बात की व्याख्या वैज्ञानिक ढंग पर पूर्णतया की गई है।

यह पुस्तक सरल भाषाशैली में लिखी गई है और ऐसे प्रत्येक मनुष्यको रोचक सिद्ध होगी, जो फलों का स्वाद ले सकता है और स्नान का आनन्द उठा सकता है।

कोचीन आर्गस (The Cochin Argus)

७ अक्टूबर १९३९

आहारशास्त्र के विषय में यह एक मनोरंजक पुस्तक है। इसमें विषम रोगों से पीड़ित पुराने (जीर्ण) रोगियों की दशा में भोजन सुधार से प्राप्त विलक्षण परिणामों का वर्णन किया गया है। डा० रतराकी सम्मति है कि रोग की चिकित्सा में किसी अन्य साधन की अपेक्षा समुचित आहार के चुनाव का महत्व कहीं अधिक है। ग्रन्थकर्त्ता के विचारानुसार रोग कोई आकस्मिक घटना वा भाग्य का फल नहीं है, प्रत्युत स्वास्थ्य-रक्षा और भोजन के नियमों के नियमित उल्लंघन से उसकी उत्पत्ति होती है और अज्ञान ही इसका कारण होता है। यदि बुरी लत वा कुव्यसन त्याग दिए जाएं तो रोग अपने आप जड़ से जाता रहेगा। जो ज्ञान इस पुस्तक में दिया गया है उसके विषय में यह उल्लेख है कि वह सत्य है और लेखबद्ध सहस्रों रोगियों के वृत्तान्तमें अचूक पाया गया है। हमको इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक में दिए हुए उपचार और सिद्धान्तों का प्रचार, साधारण मनुष्य और उन चिकित्सकों के लिए, जो किसी रोग में लाभपूर्वक औषधियों के विवेकवर्जित प्रयोग को छोड़ सकते हैं, इन दोनों के लिए ही अत्यन्त मूल्यवान प्रमाणित होगा।

लीडर इलाहाबाद (The Leader Allahabad)

१० अक्टूबर १९३९

प्राकृतिक चिकित्सा के दर्शन वा तत्त्वचिंतन के आधार पर लिखी गई इस पुस्तक में ग्रन्थकर्त्ता ने भिन्न २ रोगों की चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के फलों और शाकों के प्रभाव की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थकर्त्ता ने यह भी बतलाया है कि रोग स्वास्थ्य और आहार के नियमों के उल्लंघन से होते हैं। उसने प्रत्येक मनुष्य को यह सम्मनि दी है कि वह अपना चिकित्सक आप बने और इस पुस्तक में बतलाए हुए सरल साधनों को ग्रहण करे। उसका दृढ़विश्वास है कि सब रोगोंका मौलिक कारण हमारा आहार ही है। उसकी सम्मति है कि औषधियां वस्तुत: सभ्यता का अभिशाप हैं। "ऐसा कोई काम नहीं है जिसको औषधि कर सकती है और जिसको समुचित आहार उससे अधिक अच्छा न कर सकता हो" "प्रकृति प्राय: सदैव पूर्ण स्वास्थ्य की जन्मदाता है"। उसकी घोषणा है कि आहार औषधि, भोजन और पान भी है। प्राकृतिक रहन सहन द्वारा मनुष्य किसी भी रोग के विरुद्ध प्रतिरोध शक्ति प्राप्त कर सकता है। ग्रन्थकर्ता से इस बात में सब सहमत होंगे कि आहार रोगप्रतिरोधक औषध का सर्वप्रथम शस्त्र है और वह सब औषधोंमें न्यूनतम व्ययसाध्य है। विविध प्रकार के फलों, यथा लीमू, संतरे, सेब अंगूर, मुनक्का, प्लांडु के गुणों के साथ अम्ल और क्षारीय आहारों की एक सूची भी दी गई है। यह सूची कुछ प्रकार के रोगों में उपयोगी है।

सामग्र्येण ग्रन्थकर्ता ने प्रचुर सामग्री के संग्रह और उसको संबंध रूप में ऐसे प्रकार से स्थापित करने में पर्याप्त परिश्रम किया है कि पाठक उसको सुगमतासे समझ सकता है। प्रतीत होता है कि पुस्तक शीघ्रता में छपी है, क्योंकि उसमें मुद्रण की अशुद्धियां बहुत हैं।

हिन्दू आउटलुक (The Hindu outlook, Delhi)

२ नवम्बर १९३९

इस लघु पुस्तिका में डा० एल० एन० रतरा ने अपनी बीस बरस से ऊपर की भारी चिकित्सा में संगृहीत भारतीय आहार-शास्त्र विषयक कुछ ज्ञान को स्वल्पस्थान में एकत्र करने का उद्योग किया है। 'स्वास्थ्य ही संपत् है' यह पुरानी कहावत चली आती है और स्वास्थ्य की रचना अधिकांश ठीक आहार से होती है। यह पुस्तक आहार के बहुत से द्रव्यों के पोषक गुणों और आहार द्वारा बहुत से साधारण रोगों के अच्छा करने के ज्ञान से भरपूर है। जो जन इस विषय में रुचि रखते हों, उन सब का ध्यान इस पुस्तक की ओर खींचा जाता है।

कार्यालय प्रस्तोता गुरुकुल विश्व विद्यालय

सं० १७७ ता० २ नवम्बर १९३९

प्रिय महाशय !

आपकी कृपापूर्वक भेजी हुई पुस्तक फुड डी मेडिसिन (Food-de-Medicine) हमको यथासमय मिली। मुझको आशा है कि वह हमारे आयुर्वेद महाविद्यालय (Medical College) के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने हमारी संस्था के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है और आशा करता हूं कि आप उसको आगे भी स्थिर रक्खेंगे।

आपका अनुरक्त –

ह० वागीश्वर,

प्रस्तोता

टिप्पणी—यह पुस्तक आजकल गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी की पाठविधि में सम्मिलित है।

अमृतबाज़ार पत्रिका, कलकत्ता

(Amrit Bazar Patrika, Calcutta)

५ नवम्बर १९३९

यह लघु पुस्तक, जिसमें स्वास्थ्य और शारीरिक व्याधियों से सम्बन्ध का वृत्तान्त प्रदर्शित है। प्राकृतिक स्वास्थ्यशास्त्र के दृष्टि बिन्दु से लिखी गई है।

ग्रन्थकर्त्ता ने ५९ संख्यक विविध शीर्षकों में फलों, शाकों, लवणों, शर्कराओं के आहारविषयक गुणों की व्याख्या की है और नाना प्रकार के उपवास, स्नान और व्यायामों के प्रभावों का भी वर्णन किया है।

ग्रन्थकर्त्ता की वर्णन शैली मन में विश्वास बैठाने वाली है। उसका यह पक्ष है कि अधिकांश शारीरिक रोग सदोष आहार का सीधा परिणाम हैं। इसी विचार के आधार पर उसने एक नवीन प्रत्युत रमणीय सिद्धान्त-कल्पना का भवन खड़ा किया है। उसकी

घोषणा है कि समुचित आहार के चुनाव द्वारा सब रोगों की चिकित्सा सफलता पूर्वक हो सकती है। प्रस्तुत सिद्धान्त की सविस्तर व्याख्या ग्रंथकर्ता की कीर्ति को बढ़ाती है।

सरल शैली में लिखी हुई यह लघु पुस्तिका साधारण जन और व्यवसायी का मनोरञ्जन अवश्य करेगी।

लाला घनश्यामदास डंडोना म्युनिसिपल कमिश्नर

डेरागाजीखां ११ नवम्बर १६३६

मैं आपकी पुस्तक फुड-डी-मेडिसिन इस पत्र के साथ वापिस भेज रहा हूं। यद्यपि मैंने उसको शीघ्रता में पढ़ा है तो भी मैं यह मानता हूं कि उसके विषयों ने मेरे ऊपर बहुत प्रभाव डाला है। यह एक संक्षिप्त किन्तु मनुष्य जीवन के लिए अतीव उपयोगी पुस्तिका है और जो लोग स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए एलोपैथी की औषधियों के अनुरागी हैं, यह उनकी आंखें खोलने का काम देगी। आपका परिश्रम प्रशंसनीय है।

काश्मीर क्रानिकिल (Kashmir Cronical)

२६ नवम्बर १६३६

जैसा कि डा० सोमदत्त ने स्वप्रस्तावना में लिखा है कि सच्चे चिकित्सक का कर्तव्य रोगीको स्वास्थ्य और आहार-विज्ञान सिखलाना है। उसका यह कर्तव्य उसके इस काम से बढ़ कर है कि वह ऐसी औषधियों का विधान करे जो लगातार प्रयोग में आकर शरीर में रोग के विष को दबाने का साधन बनती हैं और इस प्रकार आगे और गड़बड़ उत्पन्न करती हैं।

डा० रतरा इस बात के विश्वासी हैं कि समुचित संतुलित आहार द्वारा न केवल रोगों की रोकथाम हो सकती है, किन्तु रोगों की चिकित्सा के लिए जो सब कुछ हमको करना है वह यही है कि समुचित आहार का चुनाव किया जाय उसका अपना और डा० सोमदत्त का अनुभव इस सिद्धान्त की यथार्थता का साक्षी है। उसने बहुत सा प्राकृतिक आहार-सामग्रियों की रचना का विश्लेषण किया है और उनकी उपयोगिता बतलाई है। उपवासों स्नानों तथा व्यायामों आदि के द्वारा चिकित्सा का विशेष उल्लेख है।

उसने बहुत से रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किया है जिनमें विषूचिका कर्कटार्बुद, राजयक्ष्मा, अर्श तथा अजीर्ण आदि का समावेश है। उसके विचार में दुग्ध शिशुओं के लिए जीवन है, युवाओं के लिए स्वास्थ्य है और वृद्धावस्था में बल है। उसने चाय, कहवा, कोकोआ और मद्य जैसे उत्तेजक पेयों को निरुत्साहित करने का समर्थन किया है।

इस पुस्तक के पढ़ने के पीछे पाठक की यह धारणा दृढ़ हो जाती है कि हमको स्वस्थ वा अस्वस्थ रखने में भोजन का बड़ा हाथ है और हमको वर्तमान की अपेक्षा भोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

काश्मीर के विषय में लेखक ने जो लिखा है, उससे हमारे पाठकों का मनोरञ्जन होगा। वह लिखता है कि काश्मीर अपने सुन्दर उद्यानों और प्राकृतिक दृश्यों के लिए विख्यात है। कश्मीरी का मुख्य आहार फल हैं।

तारापोरवाला का इण्डियन लिट्रेरी रिव्यू

Taraporawala's Indian Litarary Review

चिकित्सा विभाग, (Medical)

दिसम्बर १६३६

आजकल आहारविज्ञान बहुत सर्वप्रिय हो गया है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि शुद्ध आहार कुछ रोगों से कष्ट पाने वाले मनुष्यों का बहुत कुछ हित कर सकता है। इस सारे विषय का समुचित प्रतिपादन डा० एल० एन० रतरा ने अपनी फुड-डी-मेडिसिन (मूल्य १)) में किया है। इस ज्ञान का आधार वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं और हमको निश्चय है कि यह पुस्तिका सब के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। यह पुस्तक साधरण जन और चिकित्सा-व्यवसायी दोनों के लिए है।

विश्वभारती, शान्ति निकेतन

२७ अगस्त १६४०

रवीन्द्रनाथ टैगोर की इच्छा है कि मैं आपको अपनी पुस्तक फुड-डी-मेडिसिन की एक प्रति उनको भेजने की कृपा के लिए उनका सर्वोपरि धन्यवाद प्रदान करूं। आपकी यह पुस्तक विश्वभारती के पुस्तकालय में मूल्यवान् वृद्धि होगी।

ह० सेक्रेटरी रवीन्द्रनाथ टैगोर

ला० प्यारेलाल साहब अवसर-प्राप्त जिला और सेशनजज

ज्वालापुर (हरिद्वार) के १३ दिसंबर १६४०

के पत्र की प्रतिलिपि

आपने ऐसी उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करके जनता पर

बड़ी कृपा की है और मैं आपको अपनी हार्दिक शुभ कामना और बधाई अर्पण करता हूं।

यह पुस्तक उन मनुष्यों के लाखों रुपये बचाएगी, जो अपना धन एलोपैथिक औषधियों पर व्यय कर रहे हैं और अपने शरीरों में विष का प्रवेश भी कर रहे हैं।

'दीपक' पौष सम्वत् १९९६

FOOD-DE-MEDICINE

लेखक व प्रकाशक

डा० एल० एन० रतरा डेरागाज़ीखां, पृष्ठ संख्या ८२ मूल्य १)

आज किसी से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दुस्तान बीमारियोंका घर बना हुआ है इसका मुख्य कारण है हमारा अनियमित और असंतुलित भोजन। प्रस्तुत पुस्तक में अनुभवी लेखक ने यही सिद्ध किया है कि वैज्ञानिक भोजन करने से कोई बीमारी या सतक नहीं आ सकती कभी रोग का आक्रमण हो भी जाए तो भी भोजन के फेरफार से उस पर विजय प्राप्त हो सकती है यह पुस्तक बड़े काम की है प्राकृत चिकित्सा पर विश्वास रखने वालों के लिए सूचनाओं के अनुसार चलने से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। लेखक ने ऐसी पुस्तक लिख कर एक भारी कमी को पूरा किया है।



यहां सब निराश रोगियों की चिकित्सा होती है। डा० रतरा जीर्ण रोगों के विशेषज्ञ हैं। वे ज़ख्मों, फोड़ों आदि की भीतरी चिकित्सा करते हैं। चीरफाड़ की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। बच्चों और स्त्रियों की विशेष चिकित्सा होती है।

अपने रोग के विषय में—

'डा० एल० एन० रतरा H. M. B.

बुलाक नं० ६, डेरागाज़ीखां' से पूछिये।

टि० १—बाहर से पत्र व्यवहार करने वाले कृपया उत्तर के लिए डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें।

टि० २—इस पुस्तक के किसी विषय में जिन सज्जनों को कुछ पूछना हो वे एक रुपया रोकड़ा फीस तथा उत्तर पाने के लिये जवाबी लिफाफा भेजकर सहर्ष जान सकते हैं।

पुस्तक मिलने के स्थान—

१— डा० लक्ष्मीनारायण रतरा H. M. B.,
मालिक—प्योर बायो-डिस्पेंसरी, डेरागाज़ीखां।

२— दि गुरुकुल बुक डिपो कांगड़ी,
P. O. गुरुकुल कांगड़ी, ज़िला सहारनपुर।

* शुद्धि-पत्र *



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
क	१५	फुड	फूड
ख	४	फुड	फूड
ग	४	कया	किया
घ	७	Edident	Evident
घ	१६	अप्राकतिक	अप्राकृतिक
ङ	५	कपा	कृपा
च	१५	भूतल	भूतल
च	२२	प्रकति	प्रकृति
ज	८	पूर्ण	पूर्ण
ज	१४	उच्छृङ्खल	उच्छृङ्खल
१	६	का	वा
२	१०	मर्त्यलोग	मर्त्यलोक
१७	११	विद्यत	विद्युत
२०	१२	का	की
२०	१६	Tree	True
२१	८	ससार	संसार
२२	२	तानु	तालु

२३	२१	ध्रव	ध्रुव
२३	२२	सुदोघ	सुदीर्घ
२५	५	मंद	मंद
२५	१०	श्रेयषां	श्रेयसां
२६	३	सप्र	सत्य
२८	१६	अत:	अन्त:
३३	१६	Grown	Crown
३४	७	को	की
३४	१६	अत्रटित	अत्रुटित
४२	१६	Milk	Mild
४३	८	Acidif	Acidity
४३	१६	Cilica	Silicia
४४	१२	Assinilation	Assimilation
४४	१६	दीर्घ नीलिका यंत्र	लिङ्गनाश वा नीलिका काच
४८	६	Lactoro	Lactose
४६	५	क्लामे	क्लोम
५३	२	उफाय	उफान
५४	१७	परिणत	परिगणित
५६	१७	मात्र	काच
५८	१	बार	दिन
५८	१५	ग्राम	ड्राम

५६	१४	Tivitching	Twitching
६०	६	Aciditis	Acidity
६१	१	स्मर्ना प्रांतकी किशमिश Smyrna	स्मर्ना प्रांत की मुनक्का
६२	१८	मदात्ममा	मदात्यया
६३	१	मौलीकाम्ल	मेलिकाम्ल
६४	७	बलप्रद	बलप्रद फल
६७	१५	पंस्त्व	पुंस्त्व
७०	१८	अंग्श्तेतिम	अंडश्वेतिमा
७२	१३	मुहाएं	मुहासे
७३	१०	छद	छंद
७४	४	सतरों	संतरों
६०	१४	ज़र्दो	ज़र्दी
६६	१३	जवन	जीवन
१०५	७	स्वेच्चा	स्वेच्छा
११२	१६	घटे	घंटे
१२३	६	ह	है
१२६	६	आहारों	आहारों के
१२६	८	के कृत्रिम	कृत्रिम
१२६	८	उंठलों	डंठलों
१३६	४	पर्ण	पूर्ण
१४४	२	ध्रव	ध्रुव
१४५	११	स्वय	स्वयं
१४७	१२	सचार	संचार

१५३	१९	कठ	कंठ
१५७	७	घला	चला
१५७	१६	ज़ुकाम	ज़ुकाम
१५८	५	स्रत	स्रुत
१५८	८	स्रत	स्रुत
१६३	५	प्रसग	प्रसंग
१७०	७	बठाइये	बैठाइये
१७४	७	दशन	दर्शन
१७४	१६	you	your
१७४	१७	your	you
१७९	१	दध	दूध
१८८	१९	फुड	फूड
१९०	३	कीति	कीर्ति
१९०	८	फुड	फूड
१९१	४	स चित	संमुचित
१९२	८	फुड	फूड
१९२	१६	फुड	फूड

कृपया इस पुस्तक में 'या' के स्थान पर सर्वत्र 'वा' पढ़ें

